अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष- 43, अंक- 02, 01-15 सितंबर 2019

हमारा धर्म

हम किसी देश-विशेष के अभिमानी नहीं,
किसी धर्म-विशेष के आग्रही नहीं,
किसी भी जाति-विशेष से बद्ध नहीं,
सद्विचारों को आत्मसात करना-हमारा धर्म है,
विविध विशेषताओं में सामंजस्य प्रस्थापित करना,
विश्व वृत्ति का विकास करना–हमारी वैचारिक साधना है।

–आचार्य विनोबा भावे

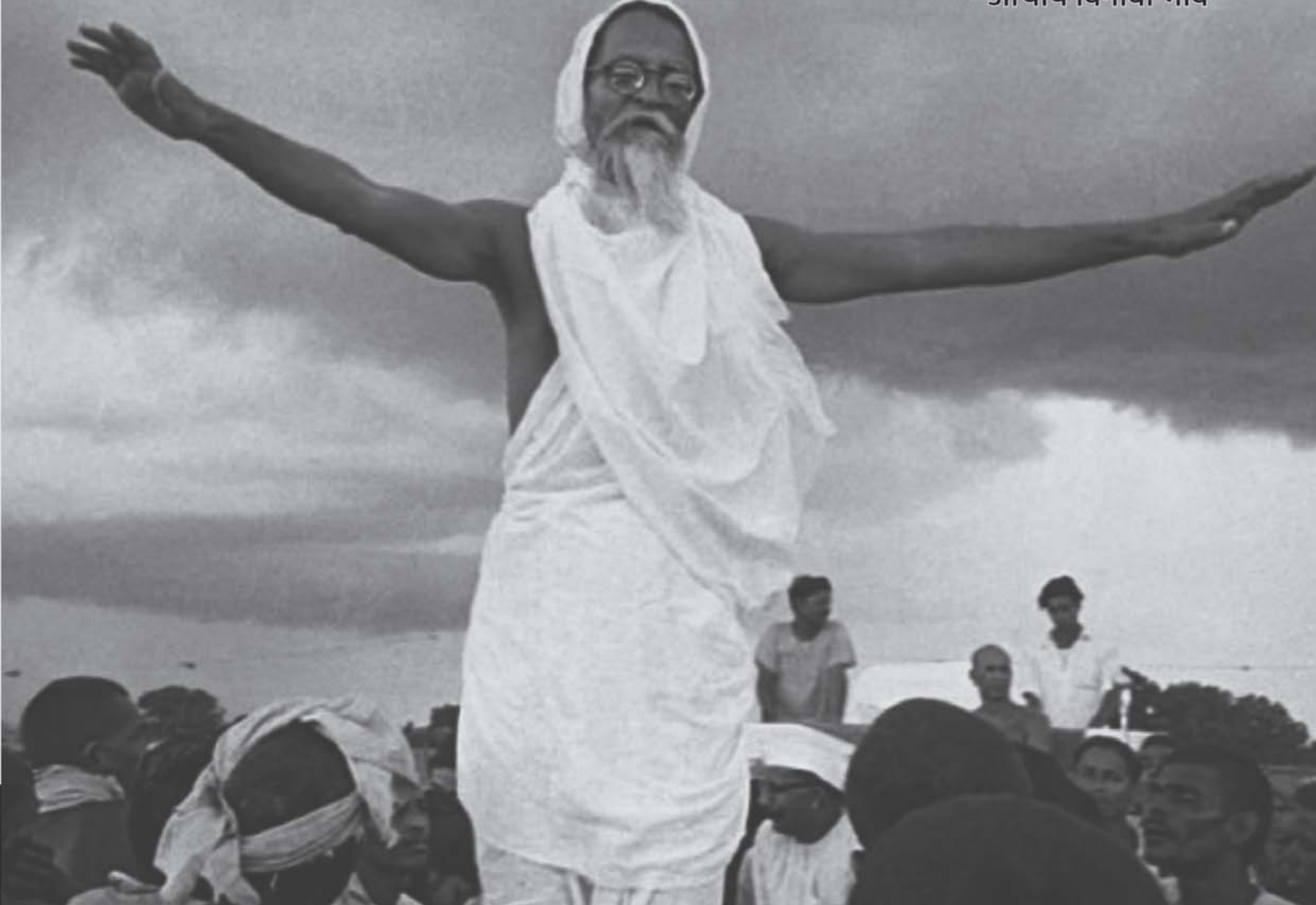

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 43, अंक : 02, 1-15 सितंबर 2019

अध्यक्ष
महादेव विद्रोही

संपादक
बिमल कुमार
सहसंपादक
प्रेम प्रकाश
09453219994
संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'
प्रो. सोमनाथ रोडे अरविन्द अंजुम,
रमेश ओझा अशोक मोती

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

एक प्रति	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC Code : UBIN0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. संपादकीय... 2
2. निष्काम कर्मयोगी विनोबा : प्रभाष जोशी... 3
3. गांधी की हत्या और आरएसएस... 5
4. खोज एक रिश्ते की... 6
5. ऐसे थे विनोबा... 8
6. अहिंसा के लिए वैराग्यशीलता होनी... 9
7. आजादी की लड़ाई : तब और अब... 11
8. आजादी की लड़ाई जारी है... 13
9. आजादी की लड़ाई और पत्रकारिता... 15
10. मरुस्थलीकरण की गम्भीर चुनौती... 17
11. लोक-विमर्श... 18
12. गतिविधियां एवं समाचार... 19
13. कविताएं... 20

संपादकीय

विनोबा-संस्कृति का नव-सृजन

आजादी की लड़ाई ने भारत ही नहीं, विश्व को अहिंसक क्रांति का दर्शन दिया। अहिंसा की शक्ति से व्यक्ति का आंतरिक परिवर्तन तो सदियों से प्रयोग-सिद्ध रहा था। अहिंसा की शक्ति से गुलामी से मुक्ति, अन्याय व शोषण का प्रतिकार तथा समाज परिवर्तन का प्रयोग गांधीजी ने शुरू किया। आजादी के बाद इस परंपरा को आगे बढ़ाने तथा एक नव-स्वतंत्र देश में अहिंसा की शक्ति से नये समाज के निर्माण व संस्कृति के नव-सृजन का काम विनोबाजी के नेतृत्व में आगे बढ़ा।

लोकतंत्र को उसके श्रेष्ठ आदर्श तक ले जाने के लिए लोकसत्ता का निर्माण, लोकसत्ता के माध्यम से परिवर्तन तथा नैतिक लोकसत्ता के स्वरूप का प्रकटीकरण जरूरी था। राजसत्ता की शक्ति का स्रोत सैन्य बल तथा उसके टिके रहने का आधार दंड-शक्ति है। सैन्य बल तथा दंड शक्ति के माध्यम से अहिंसक व्यक्ति एवं अहिंसक समाज का निर्माण संभव नहीं है। अहिंसक समाज के निर्माण के लिए वैकल्पिक अहिंसक शक्ति की ऊर्जाओं को प्रतिष्ठित करना व उन्हें प्रभावी बनाना जरूरी था। इसका स्रोत आत्मबल में है तथा प्रेम, करुणा, सेवा व कष्ट सहन करने की शक्ति जैसे मानवीय गुण इसके साधन हैं। विनोबाजी के नेतृत्व में सर्वोदय जमात ने इसी काम का बीड़ा उठाया। यदि अहिंसक समाज का निर्माण करना साध्य है तो इसका साधन अहिंसक शक्तियां ही होंगी। प्रचलित राजनीति से अलग, वैकल्पिक मार्ग के निर्माण के काम को विनोबाजी ने विश्व के सामने एक मिसाल के रूप में रखा। सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा आदि माध्यमों के बिना परिवर्तन का प्रवाह आगे नहीं बढ़ पाता। एक व्यापक मानसिकता का निर्माण इन मूल्यों के पक्ष में हुआ।

भूदान यज्ञ के अहिंसक प्रयोग से व्यापक स्तर पर हृदय परिवर्तन का काम हुआ तथा उन गांवों में एक न्यूनतम सर्व-सहमति बनने का मार्ग प्रशस्त हुआ। भूदान-ग्रामदान से ग्राम स्वराज्य तक की यात्रा एक नये अहिंसक समाज के निर्माण की नींव बनती चली गयी। नये मूल्यों की स्थापना, समाज की व्यवस्था के संचालन में नये शक्ति स्रोतों (जैसे प्रेम, करुणा, त्याग, कष्ट सहन आदि) का प्रयोग, गांव में धीरे-धीरे सर्व सहमति का निर्माण तथा इन चहुंमुखी परिवर्तनों के आधार पर ग्राम स्वराज्य के लक्ष्य की ओर कदम दर कदम बढ़ना—एक अद्भुत प्रयोग था, जिसे विश्व आशा भरी नजरों से देख रहा था। यदि विनोबा न होते तो ग्राम स्वराज्य का विचार वह स्वीकार्यता न पाता जो आज उसे प्राप्त है। वैकल्पिक समाज निर्माण के काम से जुड़े लगभग सभी समूह मानने लगे हैं कि यदि लोक का स्वराज स्थापित करना है तो उसकी बुनियाद में ग्राम स्वराज्य होगा। विनोबाजी ने यह स्थापित किया कि केन्द्रीकृत हिंसा की शक्ति पर आधारित राज व्यवस्था तथा केन्द्रीकृत शोषण-दोहन आधारित अर्थव्यवस्था—इन दोनों का विकल्प ग्राम स्वराज्य है।

विनोबाजी का महत्त्वपूर्ण योगदान संगठन एवं निधि के संबंध में उनके विचारों से भी प्रकट होता है। सशस्त्र क्रांतियों में संगठन भी सैन्य संगठनों की अनुकृति के समान बनाया जाता था। लोकतांत्रिक किन्तु राजसत्ताभिमुख संगठन में भी श्रेणीबद्धता होती है। अहिंसक क्रांति के संगठन को अकेन्द्रीकृत व बिना श्रेणीबद्धता के होना चाहिए। इसीलिए विनोबाजी ने एक मिलापी संगठन के निर्माण पर जोर दिया, जो बिना श्रेणीबद्धता वाला (non-hierarehical) हो। वे असंगठन की भी बात करते थे। यानि जहां लोकसत्ता को प्रकट करने वाले लोकसंगठन का निर्माण हो जाये, वहां संगठन के सदस्यों को स्वयं को लोक-संगठन में विलीन कर देना चाहिए। संगठन की संरचना में समता और अहिंसा का दर्शन होना चाहिए।

उसी प्रकार कार्यकर्ता को किसी केन्द्रीय निधि पर निर्भर न रहना पड़े, इसलिए विनोबाजी निधि मुक्ति की भी बात करते थे। कार्यकर्ता स्वयं श्रम करे तथा उसके योगक्षेम की जिम्मेदारी समुदाय उठाये तभी उससे लोकसत्ता का निर्माण एवं लोक संगठन का निर्माण होगा। अनुभव बताता है कि केन्द्रीय निधि, कितने भी उच्च विचारों से क्यों न बने, उसमें केन्द्रीयता का चरित्र आ ही जाता है। लोक आधारित बनने की दिशा में बढ़े, उसका बीज निधि मुक्ति के मंत्र में है।

अहिंसक समाज निर्माण के काम से जुड़े लोगों को विनोबाजी से सदैव प्रेरणा और मार्गदर्शन मिलता रहेगा। **–बिमल कुमार**

निष्काम कर्मयोगी विनोबा : प्रभाष जोशी की दृष्टि में

❑ अव्यक्त

अप्रैल, 1992 से प्रभाष जोशी ने अपना प्रसिद्ध स्तंभ 'कागद कारे' लिखना शुरू किया था. इस स्तंभ में कई बार उन्होंने अपने प्रिय व्यक्तित्वों के बारे में भी लिखा. बाद में इनमें से अलग-अलग तरह के आलेखों को छांटकर पांच पुस्तकें छपीं. इन्हीं में से एक पुस्तक है 'जीने के बहाने'. अलग-अलग तरह की शख्सियतों के बारे में लिखे गए इन लेखों में पहले तीन लेख महात्मा गांधी पर हैं. इसके बाद चार लेख विनोबा पर हैं और एक लेख जयप्रकाश नारायण पर. हों भी क्यों नहीं. प्रभाष जी स्वयं कहा करते थे कि मैं यदि कुछ हूं तो गांधीवादी हूं।

विनोबा और जेपी के साथ तो उनके निजी तौर पर बड़े ही आत्मीय संबंध रहे. विनोबा के बारे में तो उन्होंने यह लिखा है कि विनोबा ने ही मुझे लिखने में डाला. एक स्थान पर प्रभाष जी ने यह भी लिखा है कि जब विनोबा पहली बार नगर स्वराज का प्रयोग करने इंदौर आए तो नयी दुनिया के लिए महीने भर उनको कवर किया. सुबह तीन बजे से शाम छह बजने तक विनोबा के साथ घूमता और फिर दफ्तर आकर टेबलॉइड साइज के पूरे दो पेज लिखता. कई बार हथेली पर भी नोट्स लेता क्योंकि विनोबा के साथ लगातार चलते रहना पड़ता था.'

साल 1995 विनोबा का जन्म-शताब्दी वर्ष था. इसे ठीक से न मनाए जाने को लेकर प्रभाष जी दुःखी थे. इस संदर्भ में उन्होंने 'कागद कारे' स्तंभ में ही एक के बाद एक चार लेख लिखे. 'हम उस बाबा को क्या भुलाएं' शीर्षक से एक लेख में वे लिखते हैं, 'गांधी के राजनीतिक उत्तराधिकारी (यानी नेहरू) की शताब्दी तो सचमुच राजसी ढंग से मनी, लेकिन उनके आध्यात्मिक उत्तराधिकारी विनोबा की जन्म-शताब्दी तो ऐसे मनी कि जैसे किसी को याद ही न हो कि विनोबा नाम के कोई महापुरुष इस देश में हुए हैं और अभी कोई पंद्रह साल पहले तक प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी उनसे आशीर्वाद लेने के लिए पवनार जाती थीं. सन् इक्कावन से सत्तर तक उनके भूदान ग्रामदान आंदोलन की धूम मची रहती थी. हज़ारों कार्यकर्ता गांव-गांव अलख जगाते रहते थे और हर सरकार से उसे समर्थन मिलता था। महात्मा गांधी ने जब सन् चालीस में व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन शुरू किया तो पहला सत्याग्रही चुना विनोबा को जो उनके आश्रम सेवाग्राम से कोई नौ किलोमीटर दूर अपने आश्रम परंधाम पवनार में रहते थे. विनोबा की सत्यनिष्ठा, नैतिक शक्ति और साधना में गांधीजी का ऐसा विश्वास था. तब आश्रम में रहनेवाले या गांधीजी के नजदीकी लोग तो विनोबा को जानते थे लेकिन देश नहीं जानता था. आखिर स्वयं गांधीजी ने 'हरिजन' में विनोबा का परिचय लिखा था।

विनोबा ने इस देश की कई परिक्रमाएं की थीं. कांडला से डिब्रूगढ़ और कश्मीर से कन्याकुमारी तक. अस्सी हजार किलोमीटर वे पैदल चले और मोटर, रेल आदि की यात्राएं जोड़ लें तो पृथ्वी का एक और चक्कर यानी आजादी के बाद सामाजिक-आर्थिक आजादी के लिए इस वामन अवतार ने पृथ्वी के तीन चक्कर लगाए. ऐसा कोई प्रांत नहीं है जिसमें विनोबा ने पदयात्रा न की हो. देश के भूपतियों ने कोई पैंतालीस लाख एकड़ जमीन उन्हें दान में दी और लगभग एक लाख गांवों के लोगों ने अपने गांव ग्रामदान में दिए. ऐसे नेता की कोई भी यादगार लोगों को नहीं होगी? फिर ऐसा क्यों हुआ कि विनोबा जन्म शताब्दी मनती नहीं दिखी? सरकारी स्तर पर नहीं तो लोग ही मनाते. जो आयोजनों के जरिये मनती दिखती है, वही हम देखते हैं बाकी कुछ दिखायी नहीं देता?'

प्रभाष जी ने विनोबा को भुलाये जाने को लेकर प्रेस और सामाजिक संगठनों पर भी बहुत ही मारक टिप्पणी की थी. उन्होंने लिखा- '...विनोबा प्रेस के हीरो कभी नहीं रहे. सिर्फ इसलिए नहीं कि वे राजनीति में नहीं थे और राजनीति को वैसे प्रभावित भी नहीं करते थे जिस तरह से खबरें बनती हैं. बल्कि इसलिए भी कि उनके काम का ज्यादातर लेना-देना गांवों और भूमि से था और हमारा प्रेस नगर केंद्रित है. जो लोग इस देश की ग्रामीण वास्तविकता से चिंतित हैं, कम से कम उन्हें तो विनोबा की जन्म शताब्दी पर उन्हें याद करना चाहिए था. प्रेस नगर और राजनीति केंद्रित है और रेडियो और टेलीविजन मनोरंजन के अलावा जो कुछ भी करना चाहते हैं, सरकार के कहने पर करते हैं. चूंकि सरकार ने नहीं कहा, इसलिए उनने भी विनोबा को उनकी जन्म शताब्दी पर याद नहीं किया.'

प्रभाष जी को आज के नेताओं में और यहां तक कि समाज में भी विनोबा के विचारों से जुड़ने और उसे समझने और अपनाने की काबिलियत पर ही संदेह होता है. अपने एक लेख में वे लिखते हैं, 'कहां विनोबा और कहां उनकी जन्म-शताब्दी मनानेवाले हम लोग. शायद महान व्यक्तियों का दुर्भाग्य है कि उनकी शताब्दियां मनाने के लिए ऐसे लोग रह जाते हैं जो उनके उत्तराधिकार के सर्वथा अयोग्य होते हैं.'

'बाबा विनोबा के सौ साल होंगे' शीर्षक वाले लेख में प्रभाष जी लिखते हैं, 'विनोबा का चलाया आंदोलन दरअसल आर्थिक और सामाजिक पुनर्रचना का अहिंसक प्रयोग था. ...सर्वोदय आंदोलन उन्होंने 'सर्वेषां अविरोधेन' ढंग से चलाया यानी किसी के भी विरोध में कोई काम नहीं किया. वे अहिंसा और करुणा से समाज और व्यक्ति में मूल परिवर्तन करके साम्ययोगी समाज बनाना चाहते थे. लेकिन गांधी के ऋण से मुक्त होने का विनोबा का प्रयोग अनिवार्यतः विनोबा का ही था. ...अगर विनोबा और जवाहरलाल नेहरू मिलकर राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक आजादी के लिए गांधी के क्रांतिकारी अहिंसक ढंग से काम करते तो क्या देश की वही हालत रहती जो हम देख रहे हैं? ...जवाहरलाल नेहरू ने वही लोकतंत्र अपनाया जिसे गांधी हिंद स्वराज्य में ही रद्द कर चुके थे. वे वेस्टमिंस्टर मॉडल के लोकतंत्र में रूसी मॉडल की आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था चाहते थे. रूस की तर्ज पर जब जवाहरलाल पंचवर्षीय योजना बनवा रहे थे तब उनके बुलावे

पर विनोबा ने योजना आयोग को कहा था कि आज जो नियोजन कर रहे हो, वह निरसन के सिद्धांत पर है. जो कुछ थोड़ा बहुत पानी नीचे के गरीबों के पास ऊपर के अमीरों के तालाब से रिसकर आएगा वह गरीबी नहीं मिटा सकेगा. अमीर और अमीर होंगे और गरीब और गरीब. ऐसा कहकर विनोबा दिल्ली से चले गये और सर्वोदय आंदोलन में लग गये. वे जानते थे कि नेहरू की कोशिशों का क्या नतीजा होगा लेकिन उनने कभी नेहरू की आलोचना तक नहीं की.'

जिस 'अनुशासन-पर्व' वाले वक्तव्य को लेकर विनोबा के बारे में भ्रम फैलाया गया और उसकी मूढ़तापूर्ण व्याख्या-दुर्व्याख्या की गई, यह जानकर सुखद आश्चर्य होता है कि प्रभाष जोशी उस दौर में भी उन अल्पसंख्यक बुद्धिजीवियों का प्रतिनिधित्व करते नज़र आते हैं जिन्हें विनोबा द्वारा प्रयोग किए गये महाभारत के इस शब्द का वास्तविक अर्थ और मर्म मालूम था और इसपर पूरे दम से सार्वजनिक तौर पर लिखने में उन्होंने गुरेज नहीं किया. विनोबा के अविरोध की साधना को प्रभाष जोशी गहनतम स्तर पर महसूस करते हुए लिखते हैं, 'दिल्ली से जो राजनीति चल रही थी उसके खिलाफ अहिंसक संघर्ष की तो विनोबा से कोई आशा ही नहीं करता था. विनोबा ने इमरजेंसी तक में इंदिरा गांधी का विरोध और जेपी आंदोलन का समर्थन नहीं किया. इमरजेंसी को उन्होंने महाभारतीय अर्थ में 'अनुशासन पर्व' कहा जिसका मतलब राज्य नियंत्रित प्रचार तंत्र ने यह निकाला कि देश को अनुशासन में रहने की जरूरत है. लेकिन राज्य का शासन और आचार्यो-ऋषियों का अनुशासन बतानेवाले विनोबा के खड़े किये आचार्य कुल ने जब प्रस्ताव पास कर के इमरजेंसी उठाने की मांग की तो न सिर्फ इंदिरा गांधी की सरकार ने उसे छपने नहीं दिया बल्कि पवनार आश्रम की जिस मासिक पत्रिका—'मैत्री' में आचार्य कुल सम्मेलन की रपट छपी थी उसकी प्रतियां भी जब्त करवा लीं. फिर भी विनोबा ने कभी इंदिरा गांधी का विरोध नहीं किया. वे जेपी आंदोलन से भी सहमत नहीं थे लेकिन उनने जेपी का विरोध तो दूर, आलोचना तक नहीं की. 'सर्वेषां अविरोधेन' को विनोबा ने इतना साध लिया था.'

लेकिन विनोबा की सबसे बड़ी साधना थी निष्काम कर्म को साधने की. प्रभाष जोशी लिखते हैं, 'जब गांधी जैसे कर्मयोगी और कीर्तिवान गुरू ने विनोबा से कहा कि हमारे सभी कामों का परिणाम शून्य है, तो यह कैसे हो सकता था कि विनोबा अपने काम का परिणाम बहुत बड़ा मानते. गांधी जब सेवा करके छूट जाना चाहते थे तो विनोबा तो और भी निष्काम सेवक थे. विनोबा ने कहा कि इन दो वाक्यों में बापू का सारा तत्वज्ञान आ जाता है. विनोबा ने इसमें से वही लिया जो वे लेना चाहते थे. यानी निष्काम कर्म करो और उसके परिणाम की कोई चिंता न करो. वह तो वैसे भी शून्य है. इसलिए विनोबा अगर अपनी जन्म शताब्दी के दिन पैदल यात्रा करने निकलते तो अपने भुला दिये जाने का उन्हें कहीं कोई दुख नहीं होता. बल्कि वे मानते कि सब कुछ वैसा ही हो रहा है जैसी कि उन्हें अपेक्षा थी. विनोबा तो सन् बयासी में इच्छा मृत्यु का वरण करने के बारह साल पहले ही क्षेत्र सन्यास ले चुके थे.'

गांधीजी ने हिंद स्वराज में आखिरी अध्याय का शीर्षक दिया था, 'छुटकारा'. यह एक अध्याय पिछले सारे अध्यायों को आध्यात्मिकता के रस में विलीन कर देनेवाला है. और विनोबा तो मूलतः अध्यात्म के जीव थे. प्रभाष जोशी विनोबा के उस छुटकाराभाव को बहुत निकट से महसूस करते हुए कहते हैं, 'देश सेवा और ब्रह्म साधना का योग गांधीजी ने विनोबा को दिया. कोई बत्तीस साल विनोबा चुपचाप रचनात्मक कार्यों में लगे रहे. गांधी की हत्या नहीं होती तो वे नहीं निकलते. गांधी का ऋण चुकाने के लिए ही वे भूदान-ग्रामदान यात्रा पर निकले और पृथ्वी की तीन परिक्रमाएं कर डालीं. जो उन्होंने किया वह उनका मूल पिंड नहीं थाद्ध गांधी-ऋण चुकाने का प्रयास था. इसलिए वे भूदान-ग्रामदान को अपना पराक्रम, अपनी उपलब्धि मान ही नहीं सकते थे. गांधी से अपनी पहली भेंट के पचास साल बाद वे कर्ममुक्ति, ग्रंथमुक्ति, फिर अध्यापन मुक्ति, स्मृति मुक्ति और क्षेत्र संन्यास लेकर उसी परंधाम पवनार में पहुंच गए. सिर्फ दो बार अपने आश्रम से बाहर आए.'

'...तब विनोबा ने कहा, 'मैं अपने मन में मान कर चल रहा हूं कि अपनी मृत्यु के पूर्व मुझे मरना है. मनुष्य को मृत्यु के पूर्व मरना चाहिए. अपना वफात अपनी आंखों से देखना चाहिए. यही मेरी आकांक्षा है. इसलिए मैंने सोचा कि मैं मरने के पहले मर जाऊं और देखूं कि भूदान का क्या होता है.' तो विनोबा ने जीते जी अपनी मृत्यु देख ली थी, बल्कि बारह साल तक देखते रहे. उन्होंने कहा भी कि 'मैंने अपनी मृत्यु अपनी आंखों से देखी, वह अनुपम अवसर था'. पंद्रह नवंबर बयासी को दिवाली के दिन वे भीष्म पितामह की तरह इच्छामृत्यु से मरे. उन्होंने अपनी मृत्यु को सचमुच उत्सव बना दिया.

मुक्ति और छुटकारे का यही मंत्र विनोबा ने प्रभाष जोशी को भी दिया था. इसे याद करते हुए एक अन्य लेख में प्रभाष जोशी लिखते हैं, 'विनोबा की समाधि वाली संगमरमर की शिला पर अपने दोनों हाथ रखकर और उनपर पूरा वजन देकर सिर नीचा किए ध्यान में एकचित्त हो गया. उस स्पर्श को पाने के लिए जो कोई बत्तीस साल पहले विनोबा की कोमल हथेली से मिला था और जिससे मैंने अपने आप को शुद्ध होते हुए महसूस किया था. उतरती शाम की उस सघन शांति में बाबा ने मुझे कहा, कर्म का मोह और अहंकार तुझे नष्ट कर देगा. इसे छोड़.'

इसी लेख में प्रभाष जोशी स्वयं विनोबा का वह प्रसंग भी सुनाते हैं जब विनोबा सेवाग्राम आश्रम छोड़कर पवनार में आश्रम बसाने जा रहे थे. उनका स्वास्थ्य बहुत कमजोर था और वे पैदल चल नहीं सकते थे. इसलिए जब वे मोटर से पवनार पहुंचने के दौरान धाम नदी का पुल पार कर रहे थे, तब उन्होंने तीन बार कहा, 'संन्यस्तं मया, संन्यस्तं मया, संन्यस्तं मया (मैंने छोड़ा, मैंने छोड़ा, मैंने छोड़ा.)' इसपर प्रभाष जोशी आगे कहीं लिखते हैं, 'विनोबा ने बहुत साधन और तपस्या से स्मृति से मुक्ति पाई थी. देश को उन्हें भुलाने में कोई खास कोशिश नहीं करनी पड़ी.'

विनोबा तो मुक्त हुए. जयंतियों और पुण्यतिथियों से उनका क्या वास्ता? स्वयं प्रभाष जोशी ने भी विनोबा की इच्छा मृत्यु के दिन कुछ भी नहीं लिखा था जबकि वे उस समय इंडियन एक्सप्रेस दिल्ली के स्थानीय संपादक थे. प्रभाष जोशी के शब्दों में, 'ऐसे बाबा से अपने संबंध का तकाजा कभी नहीं रहा कि उनके अग्नि संस्कार में शामिल होते या उनके जन्म दिवस या पुण्यतिथि पर परंधाम पवनार जाते.' ❑

गांधी की हत्या और आर.एस.एस.

❑ आचार्य विनोबा

गांधीजी की हत्या आरएसएस ने की या करायी, यह बात कहने से कानून हमें रोकता है। लेकिन तथ्य इस बात के बिल्कुल आसपास हैं। नाथूराम गोडसे हिन्दू महासभा का आदमी था। और हिन्दू महासभा तकनीकी रूप से आरएसएस नहीं है। बस यही अंतर इस ऐतिहासिक सत्य के सामने खड़ा है। देश ही नहीं, दुनिया भर के लेखकों, इतिहासकारों और विश्लेषकों ने विश्व इतिहास के इस जघन्य हत्याकांड पर बहुत साफ-साफ लिखा है। किस प्रकार निचली अदालत के फैसले में सावरकर आदि को बरी किया गया, जबकि बाद में कपूर आयोग ने गांधीजी की हत्या में सावरकर की संलिप्तता मानी, यह सब इतिहास का हिस्सा है। लेकिन विनोबा कर्मयोगी संत थे। अपने इस उद्बोधन में अपना मत वे बहुत स्पष्टता के साथ रखते हैं। कानून जिसे रोकता है, वह बात वे भी नहीं कहते, लेकिन जो कुछ वे कहते हैं उसके बाद कहने को कुछ बाकी नहीं बचता। विनोबा का यह उदबोधन 15 मार्च 1948 का है, जब सर्व सेवा संघ और सर्वोदय समाज का गठन हो रहा था। सेवाग्राम में उस दिन उनके श्रोताओं में तत्कालीन भारत के प्रायः सभी महापुरुष राजनेता उपस्थित थे। यह प्रसंग गोपालकृष्ण गांधी की पुस्तक 'कल तक बापू थे, आज रहनुमाई कौन करेगा' से लिया गया है। –सं.

मैं उस प्रान्त का हूं जिसमें आरएसएस का जन्म हुआ। जाति छोड़ कर बैठा हूं। फिर भी भूल नहीं सकता कि मैं उसकी जाति का हूं, जिसके द्वारा यह घटना हुई। कुमारप्पाजी और कृपलानी जी ने फौजी बन्दोबस्त के खिलाफ परसों सख्त बातें कहीं। मैं चुप बैठा रहा। वे दुःख के साथ बोलते थे। मैं दुःख के साथ चुप था। न बोलने वाले का दुःख ज़ाहिर नहीं होता। मैं इसलिए नहीं बोला कि मुझे दुःख के साथ लज्जा भी थी। पवनार में बरसों से रह रहा हूं। वहां पर भी चार-पांच आदमियों को गिरफ्तार किया गया है। बापू की हत्या से किसी न किसी तरह का सम्बन्ध होने का उन पर संदेह है। वर्धा में गिरफ्तारियां हुईं, नागपुर में हुईं, जगह जगह हो रही हैं। यह संगठन इतने बड़े पैमाने पर बड़ी कुशलता के साथ फैलाया गया है। इसके मूल बहुत गहरे पहुंच चुके हैं। यह संगठन ठीक फासिस्ट ढंग का है। उसमें महाराष्ट्र की बुद्धि का प्रधानतया उपयोग हुआ है। चाहे वह पंजाब में काम करता हो या मद्रास में। सभी प्रान्तों में उसके सालार और मुख्य संचालक अक्सर महाराष्ट्रियन और अक्सर ब्राह्मण रहे हैं। गुरुजी (सदाशिव माधव गोलवरकर, आरएसएस के तत्कालीन सरसंघचालक) भी महाराष्ट्रियन ब्राह्मण हैं। इस संगठन वाले दूसरों को विश्वास में नहीं लेते। गांधीजी का नियम सत्य का था। मालूम होता है, इनका नियम असत्य का होना चाहिए। यह असत्य उनकी टेक्नीक - उनके तंत्र – और उनकी फिलॉसफी का हिस्सा है।

एक धार्मिक अखबार में मैंने गोलवलकर का एक लेख या भाषण पढ़ा। उसमें लिखा था कि हिन्दू धर्म का उत्तम आदर्श अर्जुन है। उसमें अपने गुरुजनों के लिये आदर और प्रेम था। उसने गुरुजनों को प्रणाम किया और उनकी हत्या की। इस प्रकार की हत्या जो कर सकता है, वह स्थितप्रज्ञ है। वे लोग गीता के मुझसे कम उपासक नहीं हैं। वे गीता उतनी ही श्रद्धा से रोज पढ़ते होंगे, जितनी श्रद्धा मेरे मन में है। मनुष्य यदि पूज्य गुरुजनों की हत्या कर सके तो वह स्थितप्रज्ञ होता है, यह उनकी गीता का तात्पर्य है। बेचारी गीता का इस प्रकार का उपयोग होता है। मतलब यह कि यह सिर्फ दंगा-फसाद करने वाले उपद्रवकारियों की जमात नहीं है। यह फिलॉसफ़रों की जमात भी है। उनका एक तत्वज्ञान है और उसके अनुसार निश्चय के साथ वे काम करते हैं। धर्मग्रंथों के अर्थ करने की भी उनकी अपनी एक खास पद्धति है।

गांधीजी की हत्या के बाद महाराष्ट्र की कुछ अजीब हालत है। यहाँ सब कुछ आत्यंतिक रुप से होता है। गांधी हत्या के बाद गांधी वालों के नाम पर जनता की तरफ से जो प्रतिक्रिया हुई वह भी वैसी ही भयानक हुई, जैसी पंजाब में पाकिस्तान के निर्माण के वक्त हुई थी।

नागपुर से लेकर कोल्हापुर तक भयानक प्रतिक्रिया हुई। साने गुरुजी ने मेरा आवाहन किया कि मैं महाराष्ट्र में घूमूं। जो पवनार को भी न सम्हाल सका, वर्धा-नागपुर के लोगों पर असर न डाल सका, वह महाराष्ट्र में घूमकर क्या करता? मैं चुप बैठा रहा।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की और हमारी कार्यप्रणाली में हमेशा विरोध रहा है। जब हम जेल में जाते थे, उस वक्त उनकी नीति फौज और पुलिस में दाखिल होने की थी। जहां हिन्दू-मूसलमानों का झगडा खड़ा होने की संभावना होती, वहां वे पहुंच जाते। उस वक्त की सरकार इन सब बातों को अपने फायदे की समझती थी। इसलिए उसने भी उनको उत्तेजन दिया। नतीजा हमको भुगतना पड़ रहा है।

आज की परिस्थिति में मुख्य जिम्मेवारी मेरी है, महाराष्ट्र के लोगों की है। यह संगठन महाराष्ट्र में पैदा हुआ है। महाराष्ट्र के लोग ही उसकी जड़ों तक पहुंच सकते हैं।

इसलिए आप मुझे सूचना करें, मैं अपना दिमाग साफ रखूंगा और अपने तरीके से काम करूंगा। मैं किसी कमिटी में कमिट नहीं हूंगा। आरएसएस से भिन्न, गहरे और दृढ़ विचार रखने वाले सभी लोगों की मदद लूंगा। जो इस विचार पर खड़े हों कि हम सिर्फ शुद्ध साधनों से काम लेंगे, उन सब की मदद लूंगा। हमारा साधन-शुद्धि का मोरचा बने। उसमें सोशलिस्ट भी आ सकते हैं और दूसरे सभी जा सकते हैं। हमको ऐसे लोगों की जरूरत है जो अपने को इन्सान समझते हैं। ❑

विनोबा-इंदिरा

खोज एक रिश्ते की

विनोबाजी की सहकर्मी कुसुम देशपांडे 1953 में विनोबाजी के पास आयीं। विनोबाजी की भूदान पदयात्रा में और उसके बाद विनोबाजी के निर्वाण तक वे विनोबाजी के साथ एक सहयोगी की तरह रहीं। दिन प्रतिदिन के विनोबा के प्रवचन और चर्चा को उन्होंने शब्दबद्ध किया। कुसुम देशपांडे की प्रकाशित विनोबा की सन्निधि में दैनंदिनी (1969-1975) में इंदिराजी और विनोबा की आठ मुलाकातों की चर्चा है।

1974 से 1979 का कालखंड भारत की राजनीति का उथल-पुथल भरा और उठा-पटक का कालखंड है। इस कालखंड में आपातकाल की पृष्ठभूमि है। 'इंदिरा-विनोबा संवाद' में उस राजनीति की स्पष्ट छाया है, होने वाली चर्चा में तत्त्वज्ञान का आधार भी है। इंदिराजी अनेकों बार विनोबाजी से मिलने आती रहती थीं। कभी सहज रूप में आती थीं, कभी मार्गदर्शन लेने आती थीं। विनोबाजी बीमार हैं, यह सुनते ही दौड़ी चली आती थीं और कभी बिल्कुल निश्चिततापूर्वक आराम से आती थीं। आश्रम में वे बिल्कुल शांत होकर सोती थीं।

एक प्रधानमंत्री और एक संत जैसी मुलाकात यह नहीं थी। विनोबा के लिए इंदिराजी उनके बड़े भाई जवाहरलाल नेहरू की कन्या है। 'चिरंजीवी इंदिरा' हैं। इस कारण रिश्ता पिता-पुत्री का है। बड़ा ही मधुर और मीठा है। संवाद में प्रेम अपनापन और जिन्दादिली है। पुत्री को अपने पिता के स्वास्थ्य की चिन्ता महसूस होती है और पिता पुत्री के स्वास्थ्य की चिन्ता करते हैं, ऐसे अनेक प्रसंग और संवाद इस मुलाकात में आपको मिलेंगे।

मुलाकात में दोनों ही एक दूसरे के स्वास्थ्य के विषय में, नींद के विषय में और आहार के बारे में जानकारी लेते हैं। इंदिराजी विनोबाजी से आहार बढ़ाने का आग्रह करती हैं। इस पर विनोबाजी कहते हैं, 'मेरी मां ने उल्टा कहा है, उसने कहा था कि तुझे कितने साल जीना है, यह भगवान ने तय नहीं किया है, कितना अन्न खाना है यह तय किया है। इसलिए कम खाओगे तो ज्यादा जिओगे।' इस पर इंदिराजी पुत्री के रूप में पिता से ज्यादा खाने के लिए बोलती हैं और कहती हैं कि, 'लेकिन बहुत ज्यादा कम करने को तो नहीं कहा।'

इंदिरा जी 2 जनवरी 1974 को विनोबाजी से मुलाकात करने आयीं। लंबी चर्चा हुई। बाद में इंदिराजी आश्रम की रसोई में कार्यकर्ताओं के साथ नीचे जमीन पर ही खाने के लिए बैठती हैं। थोड़ी देर में विनोबा आते हैं और विनोदपूर्वक इंदिराजी को कहते हैं, 'चर्चा भरपेट हुई है, इसलिए जरूरी नहीं कि भोजन भी भरपेट हो।' इंदिराजी के साथ ही सभी लोग हंसते हैं। बाद में विनोबाजी हंसते-हंसते आश्रम की बहनों से कहते हैं, 'इन लोगों को अच्छा खाना खिलाना, ताकि ये फिर से आयें।'

1977 में आपातकाल के प्रश्न पर लोकसभा के चुनाव में इंदिराजी की जबर्दस्त हार होती है। कई वर्षों के उनके साथी और मंत्री उन्हें छोड़कर चले जाते हैं। प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई जांच समिति का गठन करते हैं। इंदिराजी चारों ओर से घिरी हुई थीं। ऐसी पराजित, एकाकी और थकी हुई इंदिराजी अधिकार के साथ विनोबाजी के आश्रम में आती हैं। इंदिराजी विनोबाजी से कहती हैं—'अभी मैं बहुत थकी हूं। न मालूम कितने वर्षों से एक दिन की भी छुट्टी नहीं मिली।...मुझे तो यहां रातभर नींद आ रही है। खूब सो रही हूं।' विनोबा वात्सल्यपूर्वक कहते हैं, 'यह आपका ही स्थान है। आप बीच-बीच में आते रहिए, आराम के लिए।'

1975 के बाद से भारत की राजनीति अधिक बिखरती चली गयी। 25 जून 1975 को मध्य रात्रि में इंदिराजी ने देश में आपातकाल लागू कर दिया। आपातकाल लागू करने के ठीक आठ महीने बाद 24 फरवरी 1976 को इंदिराजी विनोबाजी से मिलने आयीं। इंदिराजी राजनीति में बहुत तेज चल रही हैं। इसे देखते हुए विनोबा ने इंदिराजी से कहा, 'जब तक जरूरी है तब तक आप काम करें, प्रधानमंत्री बनी रहें। पर जब जरूरत न रहे तो छोड़ दें, राज और जनता की सेवा में आ जायें, अशोक की तरह।' इस पर इंदिराजी ने कहा, 'जी हां, मेरी भी वही राय है।'

मार्च 1977 के लोकसभा चुनाव में पराजित होने के बाद इंदिराजी 24 जुलाई 1977 को विनोबा के पास आयीं। उस समय विनोबाजी ने उनसे कहा, 'आपका भी तो कर्ममुक्ति का समय आ गया है! आपने कहा था कि अशोक के मुताबिक आप भी एक दिन अपना पद छोड़ देंगी और जनता की सेवा के लिए निकल पड़ेंगी।...जब मैं अशोक जैसे बाहर निकलने की बात करता हूं, तब मतलब यह नहीं कि समाज को टालना है, बल्कि पॉलिटिक्स छोड़ना है और समाजसेवा के लिए निकल पड़ना है। मैं तो इतना ही कहूंगा कि पॉलिटिक्स का विचार बिल्कुल छोड़कर आध्यात्मिक दृष्टि से आप निकल पड़ें। थोड़ी देर सत्संग के लिए, चिन्तन-मनन के लिए एक जगह बैठ सकते हैं। बाकी घूमते रहें।

23 जनवरी 1978 को इंदिरा जी विनोबाजी से मिलने आती हैं। विनोबाजी पुनः वही विषय छेड़ देते हैं।

विनोबाजी : इंदिराजी, पॉलिटिक्स से कब मुक्त हो जायेंगी? मन से तो मुक्त हैं ही। शरीर से कब मुक्त होंगी, इसकी राह बाबा देख रहा है। इलेक्शन में हार गयी हैं, तो हम लोग कहते हैं, हारे को हरिनाम! निर्मला क्या कहती है?

निर्मला देशपांडे : हार कर छोड़ना ठीक नहीं। जीतकर छोड़ना चाहिए।

विनोबाजी : हार कर छोड़ना ठीक नहीं। जीतकर छोड़ना चाहिए। फिर चाहे अगले जनम में भी सफलता क्यों न मिले! अकबर बादशाह का सेक्रेटरी था। उससे अकबर ने पूछा, भगवान ने जब अक्ल बांटी थी, तब कौन-कौन गैरहाजिर थे? सेक्रेटरी ने कहा, नंबर एक, बादशाह अकबर गैरहाजिर था। अकबर ने पूछा, ऐसा क्यों? सेक्रेटरी बोला, अक्ल होती तो अकबर राज छोड़ देता। इस पर इंदिराजी के साथ ही सभी लोग खिलखिलाकर हंसने लगते हैं। इस मुलाकात में बाप बेटी को चिढ़ाकर खिझाकर उनको सांत्वना देते हैं। ऐसा विनोबा और इंदिराजी का संवाद है।

निर्मला देशपांडे : सबसे बड़ा काम यही होगा कि सभी काफी घूमें। इसके बिना संपर्क कैसे रख सकते हैं?

विनोबाजी : यह ठीक है। पॉलिटिक्स छोड़कर घूमना होगा। बाबा राह देख रहा है, इंदिराजी अशोक के मुताबिक कब निकलेगी।

इंदिराजी : बाबा थोड़ी-थोड़ी देर में वहां पहुंच जाते हैं।

विनोबा (हंसते हुए) : बाबा थोड़ी-थोड़ी देर में पहुंचता है, आप कब पहुंचेंगी?

इंदिराजी भले ही राजनीतिज्ञ थीं, लेकिन वे श्रद्धावान थीं। विनोबा, जे. कृष्णमूर्ति, आनंदमयी मां के पास वे नियमित रूप से जाती रहती थीं। अध्यात्म की तरफ उनका झुकाव था। 26 जुलाई 1977 को इंदिराजी विनोबाजी से मिलने आती हैं। इस चर्चा का बड़ा हिस्सा अध्यात्म का है। विनोबा से वे पूछती हैं कि जीवन के प्रत्येक क्षण प्रत्येक स्तर और कार्य में आध्यात्मिकता कैसे रहेगी, यह बताइये। इस पर विनोबा उनसे प्रत्येक श्वास के साथ राम नाम कहना चाहिए, ऐसा तो कहते ही हैं, लेकिन 'अष्टादशी' पुस्तक की सिफारिश भी करते हैं। विनोबा एक जगह इंदिराजी के बारे में कहते हैं कि इंदिराजी पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव है, कारण कि वह पूना और शांतिनिकेतन में रही हैं। इंदिरा-विनोबा की चर्चा में कई जगह पाठकों को इसका प्रत्यय मिलेगा।

2 जनवरी, 1974 की मुलाकात में इंदिराजी विनोबा से कहती हैं कि जिसे पश्चिम में प्रगति मानते हैं, उसे ही वे (उद्योगपति-बुद्धिजीवी) भी मानते हैं।...इस समय सारा वातावरण ऐसा है कि हमें क्या मिल सकता है? हमें अधिक से अधिक मिलना चाहिए, मनुष्यों से भी, धरती से भी अधिक से अधिक मिले। यह बात हमारी प्राचीन विचारधारा के विरोध में है।' बंगलादेश का युद्ध जीतने के बाद इंदिराजी को 'दुर्गा' कहा गया। कठोर निर्णय लेने वाली 'फौलादी स्त्री' की उनकी छवि थी। लेकिन इंदिरा-विनोबा संवाद में इंदिराजी के कोमल स्त्री-हृदय का दर्शन होता है।

3 सितंबर 1974 की मुलाकात का संवाद :

इंदिराजी : कंपूचिया (कंबोडिया) देश के बारे में काफी भयानक जानकारी मिली है। पहले की सरकार ने सभी बुद्धिजीवियों, शिक्षकों आदि हजारों को बुरी तरह से मार डाला है। ये अपने ही देश के बुद्धिमानों को इस तरह खत्म करना अमानवीय काम है। हमारे एक मित्र वहां की तस्वीरें लाये हैं। मैंने भयानक तस्वीरें देखीं, तो रातभर सो नहीं सकी।

विनोबा : आपसे पूछा था, रात को नींद कैसे आती है? तब आपने कहा था कि अच्छी नींद आती है। पर अब उस दिन आप सो नहीं सकीं।

इंदिराजी : हमेशा तो अच्छी नींद आती है, लेकिन ऐसी कोई घटना होने पर दूसरे का दुःख, तकलीफ देखने पर कभी-कभी ऐसा हो जाता है। अपने खुद के दुःख का कोई असर नहीं होता, लेकिन उस दिन वे तस्वीरें देखीं तो ऐसा हुआ था।

इंदिरा और विनोबा की मुलाकात, संवाद से इंदिराजी के अनेक पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है। विनोबाजी को एक-दो मराठी वाक्य बोलकर वे सुनाती हैं। इस संवाद से हमें समझ में आता है कि इंदिराजी को मराठी, तमिल, उर्दू आदि भाषाओं का ज्ञान तो था ही, लेकिन मलेशियायी भाषा भी वे जानती थीं। जापानी और चीनी भाषा की विशिष्टता को भी वे जानती थीं। इंदिराजी विनोबाजी को एक कथा सुनाती हैं। इंदिराजी की कथन शैली कितनी सुंदर है। देखिए—

एक कहानी है, अमरीका का एक बहुत गरीब नीग्रो था। उसके पास कुछ भी नहीं था। उसे दूसरे किसी ने पथरीली जमीन का एक टुकड़ा दिया। उसने बहुत मेहनत करके उसे ठीक किया। यह देखकर एक पादरी ने उसे कहा कि जॉन, तुमने और ईश्वर ने मिलकर कितना अच्छा काम किया। इस पर उसने कहा कि आपने पहले जमीन नहीं देखी थी, जब केवल ईश्वर उसे देख रहा था।

24 जनवरी 1978 की चर्चा में मृत्यु का विषय निकलता है। इंदिराजी को मारने का षड्यंत्र चल रहा है, यह विनोबा को पहले ही बताया गया था। उस संदर्भ में—

विनोबाजी : पिस्तौल से इंदिरा जायेगी तो हुतात्मा हो जायेगी। (चंद मिनट रुक कर) अपने शास्त्र में लिखा है, जब तक किसी का प्रारब्धक्षय नहीं होता तब तक कोई मरता नहीं।

इंदिराजी : प्रारब्ध यानी क्या?

विनोबाजी : जिस पूर्व कर्म से यह जन्म प्राप्त हुआ, वह पूर्व कर्म खत्म हो गया तो प्रारब्ध खत्म हो गया।...मेरे मन में मृत्यु के बारे में एक निर्णय हो गया है। वह निर्णय यह है कि मृत्यु का कारण भौतिक नहीं होता है, भौतिक कारण तो निमित्तमात्र होता है। मुख्य कारण यह है कि जिस वेग (प्रारब्ध) से शरीर चलता था, वह वेग समाप्त हुआ। जिस क्षण वह वेग खतम होने वाला है, उस क्षण के पहले मृत्यु आ ही नहीं सकती। इस संवाद के बाद बहुत देर तक दोनों स्तब्ध रहे।

25 जून 1978 की मुलाकात में पुनः मृत्यु का विषय निकला। निरंतर काम की व्यस्तता के विषय पर इंदिरा जी कहती हैं कि जब तक जीवन है तब तक काम करते रहना है।

विनोबाजी : गांधीजी गये तो अंत में उन्होंने 'हे राम' कहा। मान लीजिए, आपकी मृत्यु होगी, तो अंत में काम याद आयेगा या राम?

इंदिराजी : आखिर में क्या याद आयेगा, कहना मुश्किल है। पर काम की बात तो नहीं आयेगी। अभी काम के बीच में दूसरी चीज तो रहती ही है। नहीं तो काम ही नहीं किया जायेगा। उस दूसरी चीज को क्या कहना, ये समझ में नहीं आता। ध्यान भी कह सकते हैं।

इंदिरा जी के अंगरक्षकों द्वारा की गयी उनकी हत्या को देखते हुए उपरोक्त संवाद पढ़कर पाठक अस्वस्थ हुए बिना नहीं रह सकता।

इंदिरा-विनोबा संवाद में इंदिराजी के व्यक्तित्व पर तो प्रकाश पड़ता ही है, ठीक उसी तरह विनोबा के विचार भी ठोस रूप में हमारे सामने आते हैं। थोड़े शब्दों में अपने विचार व्यक्त करने की विनोबा की शैली से पाठक चकित हो जाते हैं। लगान अनाज के रूप में लिये जाने और बेलगांव सीमा प्रश्न के समाधान पर विनोबा के विचार प्रथमतः भले अव्यावहारिक लगे, फिर भी थोड़ा विचार किया जाये तो विनोबा के विचार से सहमत हुए बिना रहा नहीं जा सकता।

सभी भारतीय भाषाओं को अपनी भाषा के लिए देवनागरी लिपि स्वीकार करनी चाहिए, देश सेक्युलर रहे और सर्वधर्म समभाव बढ़े, इसके लिए विद्यालयों में बच्चों को सभी धर्मों की जानकारी देनी चाहिए, द्विभाषीय और सांस्कृतिक लोगों का सम्मिश्रण हुए बिना प्रेम और सहजता बढ़ नहीं सकती और इसके लिए विनोबा द्वारा बेलगांव सीमा प्रश्न के सुझाये गये समाधान में विनोबा के विचार देश और हृदय को जोड़ने के लिए है। इंदिरा-विनोबा के इस संवाद में विनोबा के सभी विचार स्पष्ट होते हैं।

पाठकों को इंदिरा-विनोबा संवाद बार-बार पढ़ना चाहिए, इससे इंदिरा-विनोबा का विचार सौन्दर्य स्पष्ट होता है। पाठकों के मन में इंदिराजी व विनोबाजी के बारे में आदर दुगुना होता जाता है।

(विजय प्र. दिवाण द्वारा संपादित पुस्तक 'विनोबा-इंदिरा : खोज एक रिश्ते की'—का एक संपादित अध्याय) ❑

ऐसे थे विनोबा

ये विनोबा के जीवन की कुछ झांकियां हैं। महापुरुषों के जीवन में घटने वाली हर छोटी बड़ी घटना या संवाद से कुछ न कुछ संकेत निकलते हैं। इस तरह की झांकियां हजारों में हैं। उनमें से ये कुछ हम सर्वोदय जगत पाठकों के लिए चुनकर लाये हैं। ये झांकियां हमें प्रेरणा देती हैं और यदि हमारी क्षमता हो तो हम उसमें से जीवन दृष्टि भी ग्रहण कर सकते हैं। –सं.

छुट्टी नहीं चाहिए

भंगियों के घृणास्पद जीवन से उनको ऊपर उठाने के लिए विनोबाजी खुद भंगी का भी काम करते थे। पवनार से चार मील की दूरी पर स्थित सुरगांव में वे रोज सुबह पैदल जाते थे और वहां रास्ते पर पड़े हुए मानव मल के सफाई-कार्य में लग जाते थे। बारिश के दिनों में भी उनका यह क्रम अबाधित चलता रहता था। पवनार से सुरगांव जाते समय रास्ते में नदी आती थी। वर्षा के दिनों में कभी नदी में बाढ़ आ जाती थी तो सुरगांव में प्रवेश नहीं हो पाता था। आज नदी में बाढ़ है, यह पता चलने पर भी विनोबाजी निश्चित समय पर पवनार से निकलते ही थे। नदी के तट तक जाते थे और फिर बाढ़ के कारण वापस लौट आते थे। कभी किसी ने उनसे कहा—नदी में बाढ़ है, आज काम होने वाला नहीं है तो छुट्टी लेने में क्या हर्ज है? फिर सरकारी कर्मचारियों का दृष्टांत देते हुए दलील दी कि वे सब साल में कितनी छुट्टियां मनाते हैं। साथी की दलील सुनकर विनोबाजी बोले—तुम क्या यह मान बैठे हो कि वे सरकारी कर्मचारी मेरा आदर्श हैं? मेरी आदर्शमूर्ति तो है सूर्यनारायण। अनादि काल से सातत्यपूर्वक अखंड प्रकाशदान का उनका कार्यक्रम चला है। उसमें कभी खंड हुआ है क्या?

कानून, नीति, अध्यात्म

बाबा का एक सूत्र ध्यान में रह गया है। वह सूत्र है, कानून से नीति श्रेष्ठ और नीति से अध्यात्म श्रेष्ठ। थोड़ा विवादास्पद और समझने में कठिन सूत्र है। किन्तु एक दिन बाबा ने उसे सहज समझा दिया—''जब बिहार में अकाल पड़ा था, तब हमने खादी वालों को कहा था कि लोग भूखे-नंगे हैं और आपके पास खादी पड़ी है, तो उसे बांट दो। यह इल्लीगल, गैरकानूनी काम है, लेकिन इम्मॉरल, अनैतिक नहीं है। जहां नैतिकता बनाम कानून का सवाल आता है, वहां कानून को छोड़कर नैतिकता को लेना चाहिए। जहां नैतिकता बनाम आध्यात्मिकता का सवाल आता है, वहां नैतिकता को छोड़ना चाहिए और आध्यात्मिकता को अपनाना चाहिए। जैसे गौतम बुद्ध ने किया था। कोई पूछेगा कि सोयी हुई पत्नी को रात में बिना उसे बताये, छोड़ जाना क्या अनैतिक नहीं है? यह

काम अनैतिक है लेकिन आध्यात्मिक है। नैतिक कार्य को छोड़कर अध्यात्म को लेना है।

उम्र का गणित

आने-जाने वाले लोगों की उम्र जानने में बाबा को हमेशा रस रहता था। एक इंजीनियर बाबा से मिलने आये। बाबा ने उनकी उम्र पूछी। बताया गया, पचपन। 'पचपन के बाद क्या आता है, मालूम है'? 'छप्पन'। 'नहीं, पचपन के बाद बचपन। बाबा ने पचपन के बाद बच्चे के समान घूमना शुरू किया।'

एक विदेशी भाई से उम्र पूछी। उसने बताया पैंतीस। तो कहने लगे, ईसामसीह तैंतीस साल जीये। तुम हो, ईस + दो।

एक युवा भाई से बात हो रही थी। बाबा ने कहा तुम दो पर आठ (28) हो और बाबा है, आठ पर दो (82)। 'इसका मतलब क्या' पूछने पर बाबा ने बताया—'मतलब आपके श्रम के दिन हैं, बाबा के विश्राम के।'

एक अंग्रेज भाई से उम्र पूछी। उसने बताया 24 ईयर्स ओल्ड। बाबा उसे कहने लगे—बाबा इज 82 ईयर्स यंग। बाकी अंग्रेजी भाषा में सब कोई ओल्ड ही होता है, फिर वह बच्चा हो या युवा हो।

उम्र का गणित समझाते हुए वे कहते थे—''हम सौ साल जीने वालों को सौ मार्क्स देते हैं। किन्तु, पहले 50 साल तक हर साल के लिए आधा मार्क यानी 50 साल के लिए कुल 25 मार्क्स। फिर 50 से 75 साल तक हर साल के लिए एक मार्क—यानी कुल 25 मार्क्स। फिर 75 से 100 साल तक हर साल के लिए दो मार्क्स यानी कुल 50 मार्क्स।''

मेरी वकीली की जरूरत नहीं

आश्रम में आने वाले अतिथि, दर्शनार्थियों द्वारा तत्त्वज्ञानात्मक, सामाजिक, घरेलू, खुद के मन की उलझन संबंधी—सब प्रकार के प्रश्न बाबा से पूछे जाते थे। ईश्वर के अस्तित्व के संबंध में एक प्रश्न के उत्तर में बाबा ने कहा—''मैं ईश्वर का बचाव नहीं करूंगा। ईश्वर इतना समर्थ है कि मेरी वकीली की उसको जरूरत नहीं। एकबार हमारे एक साथी कह रहे थे, मैं ईश्वर को नहीं मानता। मैंने उनसे कहा कि ईश्वर को आप न मानें तो उसमें ईश्वर का कुछ नहीं बिगड़ता। बिगड़ेगा तब, जब ईश्वर आपको नहीं मानेगा। बच्चा मां को न माने तो क्या बिगड़ने वाला है? हां, मां यदि बच्चे को न माने तो जरूर बिगड़ेगा।''

सर्वधर्म समभाव

बाबा की चिन्तन-पद्धति 'भी' वादी थी, 'ही' वादी नहीं। वे कहते थे ''मेरी यह अनुभूति है कि मैं हिन्दू हूं, मुसलमान भी हूं, ईसाई भी हूं, बौद्ध-यहूदी-पारसी भी हूं। अगर मैं कहता हूं कि मैं किसी एक धर्म का हूं तो सत्य के साथ असत्य को भी ग्रहण कर लेता हूं। और मैं किसी धर्म का नहीं हूं, कहने से उन धर्मों में जो सत्य का अंश है, उसको भी छोड़ देता हूं। सत्य का अस्वीकार न हो और असत्य का स्वीकार न हो इसलिए मैं 'भी' वाली बात कहता हूं।

चार भूमिकाएं हो सकती हैं—(1) मैं हिन्दू हूं, मुसलमान नहीं हूं। (2) मैं मुसलमान हूं, हिन्दू नहीं हूं। (3) मैं हिन्दू भी नहीं हूं, मुसलमान भी नहीं हूं। (4) मैं हिन्दू भी हूं, मुसलमान भी हूं। मेरी चौथी भूमिका है। पहली भूमिका में यह हो सकता है कि मैं हिन्दू हूं और मेरे हिन्दुत्व में सब समा जाता है। लेकिन 'मैं हिन्दू हूं' कहने से मुसलमान से अलग पड़ जाता हूं। मैं दोनों नहीं हूं कहने से मेरा तीसरा पंथ पड़ जाता है। लेकिन मैं हिन्दू भी हूं और मुसलमान भी हूं कहने से हिन्दू और मुसलमान दोनों को एक प्लेटफार्म पर ला सकता हूं।''

''मैं गीता, जपुजी, कुरान, बाइबिल पढ़ता हूं। लोग कहते हैं, तुम किसी एक किताब को पकड़ो। मैं कहता हूं कि मैं किसी एक किताब को नहीं पकड़ता, ईश्वर को ही पकड़ता हूं। सोचना चाहिए कि ईश्वरीय ज्ञान का एक अंश इस्लाम में आया है। बहुत अच्छा अंश है। लेकिन एक दूसरा भी अंश है, जो हिन्दू धर्म में पड़ा है। एक तीसरा भी है, जो ईसाई धर्म में पड़ा है। और अन्य धर्मों में भी भिन्न-भिन्न अनुभव भरे पड़े हैं।'' *(संकलित)*

सत्तर साल पहले

अहिंसा के लिए वैराग्यशीलता होनी चाहिए!

❑ विनोबा

स्वातंत्र्य ही एक महान आनंद

स्वराज्य तो आया, लेकिन कुछ लोगों को यों बोलते सुनता हूं कि स्वराज्य के साथ जो आनंद महसूस होना चाहिए था वह नहीं हो रहा है। बात सही भी है। लेकिन उसमें हमारा क्या दोष है, और उसके लिए क्या करना चाहिए, यह सोचने से पहले हमें एक बात निश्चित रूप से समझ लेनी चाहिए कि स्वाधीन होना, अपना भला या बुरा करने की शक्ति होना, यही एक बड़ी बात है और यही एक महान आनंद है। जब स्वराज्य नहीं था तब हम लोग यों कहते थे कि स्वराज्य की बराबरी कोई सुराज्य नहीं कर सकता। और इस विचार से हमको स्फूर्ति भी मिलती थी। लेकिन अब यों कह रहे हैं या मान रहे हैं कि अगर सुराज्य नहीं होता है तो स्वराज्य किस काम का है? यानी चंद बरसों पहले जो विचार हमको स्फूर्ति देता था, उससे बिल्कुल उलट विचार आज काम कर रहा है।

आत्मा का स्वभाव

उस समय हम जो बात कहते थे वह कोई रूपक या अलंकार था, ऐसी बात नहीं है। वह एक महान विचार था, आत्मा का विचार था। आत्मा कभी पराधीन नहीं रहना चाहती। यह प्रवृत्ति हम छोटे से छोटे प्राणी में देखते हैं। एक चूहे को पिंजड़े में रख कर हम चाहे जितना अच्छा खिलायें-पिलायें, तब भी वह सुखी नहीं रहता है। अपनी पराधीनता से मुक्त होने के लिए वह छटपटाता रहता है। आत्मा की यह सहज प्रवृत्ति है। आत्मा के इस स्वभाव का स्मरण हमको हमेशा रहना चाहिए। और वह स्मरण चंद बरसों तक हमें था, जब हम पराधीन थे। लेकिन अब स्वाधीन होने के बाद दूसरी बात कह रहे हैं।

आजाद को ही विधि-निषेध

यह बात जरूर है कि स्वाधीन हो जाने के बाद हमको सुधार जोरों से करने चाहिए। लेकिन अब तक तो हममें न सुधार करने की शक्ति थी न बिगाड़ करने की। क्योंकि हम स्वतंत्र ही नहीं थे। शास्त्रकारों ने कहा है कि हम नीति का विधि या निषेध उन लोगों के लिए बताते हैं, जो स्वतंत्र हैं। जो अ-स्वतंत्र हैं उनके लिए कोई भी नैतिक विधि-निषेध लागू नहीं हैं। वह उनको ही लागू हैं जो उनपर अमल करने के लिए आजाद हैं। शास्त्रकारों ने सुकृत की व्याख्या की है—"स्वयं कुरुत तस्मात् सुकृतम्।" जिस चीज को हमने खुद बनाया है, वही सुकृत है, वही उत्तम कृति है। जिस चीज को हमने, अपने पुरुषार्थ से नहीं बनाया है, वह कितनी भी कीमती और अपूर्व क्यों न हो, हमारे लिए सुकृत नहीं हो सकती।

स्वराज्य ही सुराज्य

स्वराज्य ही सु-राज्य होता है, इसको नहीं भूलना चाहिए। कुछ लोग तो यहां तक कहते हैं कि जिन बातों के लिए हमने स्वराज्य लिया, उनका दर्शन अगर स्वराज्य में नहीं होता है तो हमने जो पाया है उसकी कोई कीमत नहीं है। लेकिन यह ख्याल गलत है। इस तरह अगर सोचने का गलत ढंग जारी रहा तो आगे जाकर वह परतंत्रता का आवाहन करेगा।

सुखासक्ति गलत है

मनुष्य को सुख जरूर चाहिए, लेकिन सुखासक्ति नहीं चाहिए, सुखासक्ति के कारण मनुष्य परतंत्रता कबूल कर लेता है। सुख-वासना बढ़ती है तब मनुष्य का स्वतंत्रता का संकल्प तीव्र नहीं रहता, यह देखा गया है। और यह हाल अक्सर उन लोगों का होता है जो अपने को अधिक सुसंस्कृत कहलाते हैं। इनकी तुलना में जंगली जातियां अधिक स्वातंत्र्यप्रिय होती हैं। वे स्वतंत्रता की कीमत समझती हैं लेकिन 'सुधरे' हुए लोगों में सुख-प्रीति अधिक होती है। अपने सुखों को कायम रखते हुए जितनी आजादी मिल सके उतनी चाहिए ऐसा उनके मन में रहता है। आजादी और सुख दोनों का तौल हमेशा उनके मन में चलता रहता है। और जब स्वतंत्रता-प्रियता से सुखासक्ति का जोर बढ़ता है तब समझ लीजिए कि उनकी परतंत्रता की तैयारी होने लगी है।

कृष्ण का उदाहरण

आप जानते हैं कि कृष्ण भगवान एक दफा अपने सब बंधु-बांधवों को लेकर मथुरा से द्वारका भाग गये थे। क्योंकि जरासंध ने, जिसके साथ उनकी लड़ाई थी, अपनी मदद के लिए कालयवन को बुलाया था। कालयवन उस समय का कोई ग्रीक राजा होगा। क्योंकि ग्रीक लोगों को आयोनियन भी कहते हैं, जिसका संस्कृत रूप होता है 'यवन'। ग्रीकों का राज्य उस समय हिन्दुस्तान की सीमा के पास ही था। तो कालयवन को जरासंध ने मदद के लिए बुलाया। कृष्ण भगवान समझ गये कि यह परतंत्रता का आवाहन हो रहा है। इसलिए लड़ाई छोड़ कर वे द्वारका चले गये। उस समय की देश की मनोवृत्ति को उन्होंने पहचान लिया। लोग स्वातंत्र्यप्रिय नहीं रहे थे, बल्कि अपनी सत्ता जमाये रखने के लिए बाहर के लोगों की मदद लेनी पड़े तो लेने के लिए तैयार थे। परतंत्रता का आवाहन करने की इस मनोवृत्ति को कृष्ण भगवान उत्तेजन नहीं देना चाहते थे। इसलिए वे लड़ाई छोड़कर द्वारका चले गये। आप देखेंगे कि हिन्दुस्तान के इतिहास में ऐसे कितने ही प्रसंग आये, जबकि जनता सुखप्रिय हो गयी और विवेक भूल गयी। लेकिन कृष्ण भगवान ने ऐसे प्रसंग पर जो काम किया वह शायद ही किसी दूसरे ने किया। किसी भी हालत में हमें स्वतंत्रता की कीमत कम नहीं समझनी चाहिए। परतंत्रता के साथ अच्छी व्यवस्था आयी तो भी उसको सहन नहीं करेंगे, ऐसी मनोवृत्ति समाज में हमेशा कायम रहनी चाहिए। इसलिए आज हमारे लोगों में जो मनोदशा मैं देखता हूं, उससे मुझे दुःख होता है और भय लगता है कि कहीं उसी पुरानी मनोवृत्ति का आगमन तो नहीं हो रहा है?

यह सुखप्रियता मनुष्य की चेतना शक्ति को मिटाती है, ऐसा कुमार नचिकेतस् ने कहा था, सुखलोलुपता सारी इन्द्रियों और बुद्धि का तेज क्षीण करती है। मैं कबूल करता हूं कि सुख की भी कीमत है। लेकिन स्वतंत्रता की तुलना में उसकी कोई कीमत नहीं है। सुखवासना को एक मर्यादा में रहना चाहिए।

सुखासक्ति हमारा पुराना रोग

हिन्दुस्तान में सुखवासना अब पैदा हुई है ऐसी बात नहीं है। वह सैकड़ों वर्षों की है। इस देश में शरीर मिथ्या, दुनिया मिथ्या, इत्यादि विचार बोलने में तो आ गये, लेकिन यहां के लोग सैकड़ों वर्षों से अक्सर सुखप्रिय ही रहे। उसी का नतीजा था कि सात हजार मील से मुट्ठी भर परदेशी व्यापारी यहां आये और यहां का व्यापार तथा राज्यसत्ता अपने हाथ में ले सके। यहां के लोग इतने सुखप्रयि बन गये थे कि अपने पड़ोसियों की भी परवाह नहीं करते थे। जहां से उन्हें तात्कालिक सुख मिला, उसके अनुकूल वह बन जाते थे।

परतंत्रता का आनंद!

हिन्दुस्तान में अंग्रेजों के पहले गवर्नर बंबई में एलफिस्टन साहब हुए। पेशवाओं का राज्य खत्म हो गया था। उस जमाने के महाराष्ट्र के लोग एलफिस्टन के राज्य में खुश थे। नौकर लोग तो बेहद खुश थे। कहते थे, पहले के जमाने में तो जब बुलावा आता था, तब कचहरी जाना पड़ता था। अब तो 11 बजे गये और छः बजे चले आये। शाम के समय में संध्या आदि के लिए मुक्त हो जाते हैं। तो यह कितना अच्छा राज्य है, और कैसी उत्तम व्यवस्था है। ऐसा था उनका परतंत्रता का आनंद।

सर्वोदय की बुनियाद

इसलिए हमें सचेत रहना चाहिए। हम लोग जो यहां इकट्ठे हुए हैं, उनको अपना जीवन सुखमय नहीं, बल्कि कठोर बनाना चाहिए। अहिंसा की हम बात करते हैं। सुख-लोलुपता और अहिंसा का साथ बनता ही नहीं। अहिंसा के लिए वैराग्यशीलता होनी चाहिए और परिश्रमनिष्ठा बढ़ानी चाहिए। जिनकी हम सेवा करना चाहते हैं, उनकी इतनी बुरी हालत है कि उनको ऊपर उठाने के लिए हम कितनी भी तपस्या करें, कम ही है।

हमारे यहां संस्थाओं में हम 'व्यवस्थित जीवन' का आग्रह रखते हैं। इतना दूध चाहिए, इतना कपड़ा चाहिए; इतनी जगह चाहिए, ऐसा हिसाब हम लगाते हैं। हिसाब तो ठीक है। लेकिन सोचना यह चाहिए कि उस व्यवस्थित जीवन का आरंभ कहां से हो। उसका आरंभ हमसे हो, ऐसा हम कहेंगे तो सर्वोदय कभी होने वाला नहीं है।

पहले पुरुषार्थ

व्यवस्थित जीवन का आरंभ तो उनसे होना चाहिए, जो अभी दुख में पड़े हैं। लेकिन हम सोचते हैं कि हम जनता के सेवक हैं न? सेवक जिन्दा रहेंगे तभी तो स्वामी की सेवा करेंगे। इसलिए सेवक को परिपुष्ट रहना चाहिए। और उसका जीवन सुव्यवस्थित होना चाहिए। ऐसा हम सेवक के नाते सोचते हैं और मन को फुसलाते हैं। मैं कबूल करता हूं, इस विचार में भी कुछ सार है। लेकिन उसकी भी हद है। सुव्यवस्थित जीवन के चिन्तन में भोगवासना कब हम पर सवार हुई इसका पता ही न लगे, ऐसा संभव है। इसलिए विवेक रखना चाहिए। सेवा तो करेंगे तब करेंगे, पहले व्यवस्थित जीवन तो कर लें। और इतने में ही भगवान ने यहां से हमको उठा लिया तो यही कहा जायेगा कि इसने अपना जीवन सुव्यवस्थित बना लिया। पहले व्यवस्थित जीवन और बाद में सेवा, ऐसा विचार करेंगे तो व्यवस्थित जीवन हो गया नकद, और सेवा रही उधार। तो ऐसा नहीं होना चाहिए। बात ऐसी है कि आहार और निद्रा बढ़ाने से बढ़ती है और घटाने से घटती है। हमेशा हम ऐसी चीजों का ही चिन्तन करते रहेंगे तो शायद देवलोक में रह जायेंगे। देवों की भी एक योनि कहलाती है। वहां केवल भोग ही पड़ा है। वहां व्यवस्थित जीवन है, लेकिन पुरुषार्थ नहीं है। मनुष्य-योनि में पुरुषार्थ है। इसीलिए मनुष्य योनि की प्रशंसा की गयी है और वह देवयोनि से बढ़कर मानी गयी है। हम संस्था वालों को देवलोक में नहीं रहना चाहिए।

कुंती का वर

स्वातंत्र्य दिन के निमित्त यह बात मैंने आपके सामने रखी। बहुत दिनों से वह मेरे मन में चल रही थी। हम लोगों को जो अनेक प्रकार की सहूलियतें हैं सो यह ईश्वर की कृपा ही है, ऐसा नहीं कह सकते। कुंती ने भगवान से वर मांगा था कि ''मुझे हमेशा विपत्ति में रख, जिससे तेरा स्मरण निरंतर रहेगा''। हमने संस्था में सब तरह से अनुकूलता रखी है, इस ख्याल से कि संस्था सेवा का एक कारगर साधन बने। लेकिन उससे हमारा खुद का तेज क्षीण न हो, ऐसी सावधानी रखनी चाहिए।

उत्तम निधि

यह गांधी निधि जब से निकली है मैं घबड़ा-सा गया हूं। गांधीजी का स्मरण हम कैसे कायम कर सकते हैं? वह तो उनके गुणों के अनुकरण और अनुशीलन से हो सकता है। वह जैसे त्यागी थे, भोग छोड़कर बैठे थे, वैसे हमको बनना चाहिए। गांधीजी का सारा जीवन परार्थ था। वे सतत जागरूक थे, चिन्तनशील थे, वैराग्य की मूर्ति थे। उनके उन गुणों का स्मरण ही हमारी उत्तम निधि है। उससे हमारा निःसंशय भला होगा। लेकिन उनके नाम से हमने पैसे इकट्ठे किये तो उस निधि से हमारा भला ही होगा, ऐसा नहीं कह सकते। भला भी हो सकता है, अगर हम विष्णु भगवान जैसे अलिप्त रहें। लक्ष्मी पांव के पास पड़ी थी, तब विष्णु भगवान को उसका पता भी नहीं था। ऐसी अलिप्तता कठिन है। लेकिन वही हममें होनी चाहिए। वह उसी में होती है जो अपने जीवन को उत्तरोत्तर कठोर बनाता जाता है। ❑

राष्ट्रीय सेमीनार का आयोजन

सर्व सेवा संघ और केरल सर्वोदय मंडल के संयुक्त तत्त्वावधान में आगामी 25, 26 व 27 सितंबर को एक तीन दिवसीय राष्ट्रीय सेमीनार का आयोजन किया जा रहा है।

इस सेमीनार का आयोजन गांधीजी के 150वें जयंती वर्ष में देश भर में किये जा रहे कार्यक्रमों की शृंखला में हो रहा है। दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रो. अपूर्वानंद, आईआईटी मुम्बई के डॉ. राम पुनियानी, गांधीग्राम विश्वविद्यालय के डॉ. देवेन्द्र ओझा, प्रख्यात सर्वोदय नेता और पूर्व सांसद डॉ. रामजी सिंह तथा गांधीजी के पड़पोते डॉ. तुषार गांधी इस सेमीनार के मुख्य वक्ता होंगे। कार्यक्रम के संबंध में विस्तृत जानकारी हमारे सेवाग्राम कार्यालय से प्राप्त की जा सकती है। **–जोश मैथ्यू**

अध्यक्ष, केरल सर्वोदय मंडल

आजादी की लड़ाई : तब और अब

अगस्त क्रांति की 77वीं वर्षगांठ पर राष्ट्रीय संगोष्ठी संपन्न

भारत के इतिहास में यदि 9 अगस्त 1942 की तारीख न होती, तो हमें 15 अगस्त 1947 की तारीख भी नसीब नहीं होती। याद कीजिए कि राष्ट्रीय आंदोलन के उस लोमहर्षक दौर में सुभाष बाबू ने आजादी के लिए खून मांगा था। 1942 में हमने खून बहाया और हमें आजादी हासिल हुई। 1942 का आंदोलन गांधीजी का आखिरी आंदोलन था। करो या मरो के आहवान ने देश में उत्साह की लहर और निर्णायक संघर्ष का जज्बा भर दिया। यह उसी निर्णायक जज्बे का परिपाक था कि महज पांच साल बाद ही देश ने आजाद हवा में सांस ली।

वयोवृद्ध सर्वोदय नेता, प्रकांड शिक्षाविद और पूर्व सांसद डॉ. रामजी सिंह ने ये बात 9 अगस्त 2019 को सर्व सेवा संघ परिसर में आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी को संबोधित करते हुए कही। उन्होंने कहा कि 1942 के पहले के तमाम आंदोलनों में गांधीजी देश को आजमा रहे थे, तैयार कर रहे थे और हौसला भर रहे थे। चौरी चौरा के बाद असहयोग आंदोलन, फिर नमक आंदोलन के बाद आया 1942 का निर्णायक दौर जब गांधीजी ने अंग्रेजों से दो टूक कह दिया कि अगर आप हमें भगवान के भरोसे नहीं छोड़ सकते तो हमें हमारी अराजकता के हवाले छोड़ जाइये। एक जीवन मूल्य की तरह आजादी का महत्त्व समझाते हुए उन्होंने कहा कि अगर हम लोकतंत्र को मानते हैं तो हमें यह भी मानना चाहिए कि आजादी हर आदमी का हक है। देश की आजादी और व्यक्तिगत नागरिक आजादी अलग-अलग नहीं हो सकती। देश को बचाने के लिए देश की एकता जरूरी है और मिलजुलकर रहना हम सबकी जरूरत है। अन्यथा हमारी आजादी भी महफूज नहीं रह सकती। हमें संकल्पित होना होगा कि अपनी आजादी से हम कोई सौदा नहीं करेंगे।

इस राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन सर्व सेवा संघ ने भारत छोड़ो आंदोलन की 77वीं वर्षगांठ के अवसर पर किया था। संगोष्ठी का विषय था—आजादी की लड़ाई : तब और अब। संगोष्ठी में भाग लेने के लिए देशभर से सर्वोदय कार्यकर्ता, समाजसेवी और शिक्षाविद इकट्ठा हुए थे। विषय प्रवेश कराते हुए सर्व सेवा संघ प्रकाशन के संयोजक अरविन्द अंजुम ने कहा कि 1942 की धरोहर केवल स्मरण करने की चीज नहीं, सबक लेने की चीज है। आज जरूरत है, अपनी चुनौतियों की शिनाख्त करने की। संसद जन विरोधी कानून बनाती है, यह औपनिवेशिक शासन की परंपरा है। आज जो इसका विरोध कर रहे हैं, वह आजादी के संघर्ष की परंपरा है। अभी हाल ही में श्रम कानूनों में सुधार किया गया है, जिसका लाभ केवल मालिकों को मिलता है। आरटीआई कानून में संशोधन किया गया है। इसका लाभ केवल सत्ताधीशों को मिलता है। अनुच्छेद 370 और 35ए कश्मीर के स्थानीय निवासियों को संरक्षण देते रहे हैं, लेकिन इन्हें अलोकतांत्रिक तरीके से समाप्त कर दिया गया। यह विध्वंसकारी दिशा है, जहां हमारे ध्यान के केन्द्र में मनुष्य और मनुष्यता नहीं है। सोचने का वक्त है कि क्या हम विध्वंस की दिशा में चल पड़े हैं? क्या हम हिरोशिमा और नागासाकी की ओर बढ़ रहे हैं?

विषय प्रवेश के बाद ही मंच पर उपस्थित अभ्यागतों ने डॉ. बनवारीलाल शर्मा पर लिखी पुस्तक 'बहुराष्ट्रीय कंपनियों की गुलामी के खिलाफ एक आंदोलनकारी की संघर्ष गाथा' का विमोचन किया और संगोष्ठी को संबोधित करने के लिए संचालक ने महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ के प्रोफेसर महेश विक्रम को आवाज दी। प्रोफेसर विक्रम ने कहा कि 1942 में हमारे सामने हमारे शत्रु की पहचान स्पष्ट थी। हम कह सकते थे कि यह शासक विदेशी है, जो हम पर अत्याचार कर रहा है। पर आज देश और देश के संसाधनों को लूटने वालों की पहचान धुंधली है। हमारे शासकों का चेहरा जरूर बदल गया है किन्तु उनका लुटेरा चरित्र नहीं बदला है। आज धर्म को राजनीति के केन्द्र में अलोकतांत्रिक भूमिका निभाते देखा जा सकता है, जबकि धर्म आदमी की व्यक्तिगत आस्था की वस्तु है। एक सेक्यूलर समाज के तौर पर सार्वजनिक जीवन में हमें धर्म के प्रतीकों का प्रदर्शन करने से बचना चाहिए।

वाराणसी के अपर नगर मजिस्ट्रेट मदन मोहन वर्मा ने बताया कि पिछले बीस वर्षों में मैंने गांधीजी की आत्मकथा की लगभग दो हजार प्रतियां आम जनता में बांटी है और मेरा यह अनुभव आया है कि जिसके भी हाथ में आत्मकथा पहुंची, उसके व्यवहार में कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य आया। जिन गांवों में मैंने गांधी की प्रतिमा लगवायी, उन गांवों के सामूहिक व्यवहार में थोड़ा ही सही, पर बदलाव आया। एक गांव में मैंने गांधी के तीन बंदरों की प्रतिमा लगवायी, उस गांव के लोगों का नजरिया भी बदला।

बतौर मुख्य अतिथि संगोष्ठी को संबोधित करते हुए देश के वरिष्ठ पत्रकार और बीबीसी के पूर्व ब्यूरो चीफ रामदत्त त्रिपाठी ने देश और समाज के बदलते मूल्यों के प्रति अपनी चिन्ता जाहिर की। उन्होंने कहा कि जिस पीढ़ी को अपनी आजादी की रक्षा करनी थी, देखता हूं कि उसके मूल्य बदल गये। जिस समाज की संवेदनाएं मर जायेंगी, वह समाज आजादी का मूल्य भी क्या समझेगा! आज तो संसद तक ने अपनी परिपाटियां बदल दीं। 370 खत्म किये जाने वाला महत्त्वपूर्ण विधेयक बिना नियमों और आवश्यक परंपराओं का पालन किये चंद घंटों में पास कर दिया गया। चिन्तित करने वाली स्थिति यह है कि पहले तो एक ही ब्रिटेन था, किन्तु आज ग्लोबलाइजेशन के दौर में दुनिया में

अनेक ब्रिटेन हो गये हैं। गांधी की कल्पना का जो समाज था, उसमें सत्य था, करुणा थी, प्रेम था और सत्याग्रह था। गांधी ने हमें सिखाया कि जब राजनीति लोगों के सरोकार से जुड़ती है तो लोग भी राजनीति के सरोकार से जुड़ते हैं। आज की समस्याएं पहले की समस्याओं से बढ़ी हुई हैं। वैश्विक पूंजी से सरकारों के गठजोड़ ने वैश्विक समस्याओं का आकार बड़ा किया है। ऐसे में गांधियन मूल्यों की प्रासंगिकता भी बढ़ी है।

मुख्य अतिथि के संबोधन के बाद संगोष्ठी में सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष महादेव विद्रोही ने अपने विचार रखे। उपस्थित श्रोताओं को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि सरकार को यह नहीं भूलना चाहिए कि संविधान निर्माताओं ने भारत को कोई एक इकाई नहीं, बल्कि राज्यों का संघ माना है। हमारा संविधान केन्द्र व राज्यों के लिए अलग-अलग सीमा रेखा खींचता है, उस रेखा को मिलाने की कोई भी कोशिश अलोकतांत्रिक और आपराधिक होगी। भारत छोड़ो आंदोलन की भावना को याद करते हुए उन्होंने कहा कि देश को गुलाम बनाने वालों ने आज अपने चेहरे बदल दिये हैं, शोषण का तंत्र अभी तक कायम है।

संगोष्ठी की अध्यक्षता करने के लिए आमंत्रित थे चौथी दुनिया साप्ताहिक के संपादक व पूर्व सांसद संतोष भारतीय। अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में उन्होंने कहा कि देश बहुत बदल गया है। आज पूरा देश हिन्दू मुसलमान के बीच बंट गया है। इस समाज विरोधी स्थिति का इस सरकार ने जितना राजनीतिक लाभ उठाया है, उतना अन्य किसी ने नहीं। इस माहौल के खिलाफ आंधी उठाने की जरूरत है। इस सरकार ने हर गलत सही का समर्थन करने के बदले मीडिया घरानों को अकूत धन कमाने में बहुत मदद की है। आज इस धारा से लड़ने और उसके सामने टिकने के लिए दुस्साहसी पीढ़ियों की जरूरत है। जो युवा, आज गांधी विचार के प्रसार की जिम्मेदारी उठाने को आगे आना चाहें, वे आगे बढ़ें, उन्हें ताकत मुहैया कराना हमारी जिम्मेदारी है। स्थितियां ज्यादा निराशा पैदा करने वाली हैं, गांधी के सामने सभ्य दुश्मन थे। आज हमारे सामने जो लोग हैं, वे अधिक असभ्य हैं। आज की सरकार के होते आपको बेरोजगारी के आंकड़े नहीं मिल सकते। किसानों की आत्महत्या के आंकड़े नहीं मिल सकते। कम से कम गांधी के समय ऐसा तो नहीं था। इसलिए कहना चाहता हूं कि तुलनात्मक रूप से परिस्थितियां अधिक कठिन हैं और समाधान के विकल्प बहुत कम हैं। ऐसे में पीढ़ियों के सामने आज दुस्साहस पालने का अवसर है, तभी कुछ बेहतर संभव हो सकेगा।

दो सत्रों में संपन्न हुई इस एकदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में इन मुख्य वक्ताओं के अतिरिक्त जिन वक्ताओं ने अपने विचार रखे, उनमें उत्तर प्रदेश सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष भगवान सिंह, सर्व सेवा संघ के ट्रस्टी मधुसूदन जी, सर्व सेवा संघ के सेक्रेटरी रमेश पंकज, चंदन पाल व शेख हुसैन, अवकाश प्राप्त आइएएस अधिकारी डॉ. कमल टावरी, अविनाश काकड़े, नीता चौबे, शक्ति कुमार, डॉ. रियाज, डॉ. मुनीजा, विश्वनाथ आजाद, तपेश्वर भाई तथा तारकेश्वर मिश्र प्रमुख थे। संगोष्ठी के प्रारंभ व समापन पर सर्वोदय कार्यकर्ता प्रशांत गुर्जर ने लोकचेतना के गीत प्रस्तुत किये। उल्लेखनीय है कि वक्ताओं और श्रोताओं सहित संगोष्ठी में भाग लेने वालों की संख्या लगभग 250 से 300 तक थी, जिसमें लगभग आधी संख्या महिलाओं की थी। संगोष्ठी के समापन के बाद मधुसूदन भाई ने धन्यवाद ज्ञापित किया। संगोष्ठी का संचालन प्रखर सामाजिक कार्यकर्ता और प्रधानाचार्य डॉ. मुहम्मद आरिफ ने किया। **–प्रेम प्रकाश**

मज़हब और सियासत के दिन लद गये। आये हैं दिन साइंस और रूहानियत के।–विनोबा

हमारा विनोबा साहित्य

.... **गीता-प्रवचन** (सा.)	110/-
.... **भागवत धर्म-सार** (मीमांसा सहित)	80/-
.... **महागुहा में प्रवेश**	75/-
.... **ईशावास्य-वृत्ति**	10/-
.... **स्थितप्रज्ञ-दर्शन** (संशोधित)	70/-
.... **कुरान-सार** (हिन्दी)	60/-
.... **जपुजी**	25/-
.... **ख्रिस्त-धर्म-सार**	22/-
.... **धम्मपदं** (नवसंहिता)	60/-
.... **मनु-शासनम्**	25/-
.... **अष्टादशी** (उपनिषद्-अनुवाद)	120/-
.... **साम्य-सूत्र**	40/-
.... **अध्यात्म-तत्त्व-सुधा**	35/-
.... **नाम-माला**	25/-
.... **विज्ञान युग में धर्म**	15/-
.... **विष्णुसहस्त्रनाम** (सा.)	130/-
.... **आत्मज्ञान और विज्ञान**	50/-
.... **सप्त शक्तियाँ**	25/-
.... **एक बनो नेक बनो**	7/-
.... **निद्रा समाधि-स्थितिः**	50/-
.... **शिक्षण-विचार**	100/-
.... **इस्लाम का पैगाम**	70/-
.... **वेदामृत**	15/-
.... **भक्ति-दर्शन** (सा.)	100/-
.... **सभी धर्म प्रभु के चरण**	30/-
.... **परिवार नियोजन और संयम**	7/-
.... **रामनाम एक चिन्तन**	10/-
.... **कर्म विवेचन**	80/-
.... **मृत्यु एक रहस्य**	60/-
.... **मुहब्बत का पैगाम**	70/-
.... **रूहुल कुरान**	25/-
.... **कश्मीर : समाधान की तलाश**	20/-
.... **कार्यकर्ता पाथेय**	35/-

–सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी

आज़ादी की लड़ाई जारी है

❑ सौरभ वाजपेयी

उर्दू के मशहूर शायर अली सरदार जाफरी ने अपनी एक नज़्म के जरिये कभी पूछा था—कौन आज़ाद हुआ? उनके स्वर में 15 अगस्त 1947 को मिली राजनीतिक आज़ादी को लेकर एक तंज था जो 'यह आज़ादी झूठी है' के नारे से उपजा था. हमारे लिए वो आज़ादी झूठी नहीं थी, सोलह आने सच्ची थी. फिर भी हम उनसे यह सवाल आज अपने देशवासियों से पूछने के लिए उधार लेते हैं. आखिर हमारे पुरखों ने किस चीज़ के खिलाफ लड़ाई लड़ी थी? क्या अंग्रेज सिर्फ एक नस्ल का नाम था या वो हमारे दुश्मन सिर्फ इसलिए थे कि वे किसी और देश के बाशिन्दे थे? आज़ादी के मतवाले किस चीज़ के खिलाफ लड़े और क्या जीते थे? आखिर पंद्रह अगस्त के उस दिन ऐसा क्या बदला था कि हम पिछले 70 बरस से उस दिन का जश्न मनाना अपना फ़र्ज़ समझते हैं. और सबसे बड़ा सवाल ये कि क्या उस दिन कुछ ऐसा हुआ था, जिसके बाद इस देश के लिए लड़ने की जरूरत ख़त्म हो गयी थी.

मेरे देशवासियों की याद्दाश्त ख़त्म हो रही है इसलिए बताना जरूरी है कि 15 अगस्त के पहले इस देश का राज सात समंदर पार बैठी महारानी विक्टोरिया चलाती थीं. वहाँ से नीतियाँ बनकर आती थीं और इस विशाल देश की विशाल आबादी पर थोप दी जाती थीं. यह हमारे फायदे के लिए नहीं था, यह ब्रिटेन को मालामाल करने के लिए था ताकि वो दुनिया की सबसे बड़ी साम्राज्यवादी सत्ता बनकर हमारे सीनों पर काबिज रह सके. यह इसलिए था कि एशिया से लेकर अफ्रीका तक चल रही उथल-पुथल को संगीन हथियारों के बूते कुचला जा सके. यह इसलिए भी था कि यूरोप और अमेरिका में उभर रहे नए-नए साम्राज्यवादी देशों की गलाकाट प्रतिस्पर्धा में ब्रिटेन का झंडा ऊंचा रखा जा सके.

यह इसलिए नहीं था कि पूरी उन्नीसवीं शताब्दी में जो तकरीबन 3 करोड़ (जी हाँ, तीन करोड़) किसान अकाल और भुखमरी के चलते अपनी जान गँवा बैठे, उनके मुंह में निवाला डालकर उन्हें बचाया जा सके. मत भूलिए कि जिंदगी और मौत से दिन-रात जूझते इन अभागे किसानों में बहुतेरे जरूर ही दलित और मजलूम रहे होंगे. यह इसलिए भी नहीं था कि दमन और शोषण झेलते जो बुनकर हथकरघा चलाने के बजाय अपने अंगूठे काट लेना बेहतर समझते थे, उनको अपंग होने से बचाया जा सके. यह इसलिए भी नहीं था कि स्थानीय उद्योग-धंधो और व्यापार-वाणिज्य के चौपट होने से जो लोग रोजगार के लिए दर-दर भटक रहे थे, उन्हें फिर काम पर लगाया जा सके. यह इसलिए भी नहीं था कि भारत के सात लाख गाँवों के करोड़ों नरकंकालों के ऊपर जो गिद्ध मंडरा रहे थे, उनकी उम्मीदें पस्त की जा सकें.

मेरे हमवतनों, यह इसलिए भी नहीं था कि इस देश में बड़े-बड़े जमींदारों को छोटे-छोटे किसानों और खेत मजदूरों का खून चूसने से रोका जा सके. बल्कि अंग्रेजों ने अपने साम्राज्य की सुरक्षा के लिए जमींदारों और रजवाड़ों की एक आंतरिक बाड़ बिछाई थी जिससे टकराकर हर गुस्सा बिखर जाए. कोई कितना भी समझाए लेकिन इसका उद्देश्य यह नहीं था कि इस देश में हजारों सालों से दोयम दर्जे के नागरिक बनकर रह रहे दलितों को उनकी नारकीय स्थिति से हाथ पकड़कर उबारा जा सके. यह उद्देश्य तो कतई नहीं था कि इस देश में शिक्षा और ज्ञान विज्ञान का विस्तार हो और लोग अपने भाग्य के नियंता खुद बनकर सत्ता में बराबर की भागीदारी निभाएं.

वे चाहते थे कि एक संपन्न देश की अर्थव्यवस्था को ब्रिटेन के फायदों के लिए खोखला बनाने का उनका एकछत्र अधिकार हो. वे चाहते थे कि इस देश में बिखरे तमाम संसाधनों को लूटकर भारत को कच्चे माल का निर्यातक बना दिया जाए. वे चाहते थे कि ये 'जाहिल' देश उनके काम भर का पढ़ ले और उनके लिए बाबूगीरी करे. वे चाहते थे कि इस देश के लोग आत्मविश्वासहीन और डरे-सहमे रहें ताकि उनकी सत्ता के खिलाफ कोई आँख उठाकर देख न सके. वे चाहते थे कि भारत को अपना सही इतिहास मालूम न हो ताकि यह भुलावा बना रहे कि भारत के लोग खुद पर राज करने योग्य नहीं हैं. वे यह भी चाहते थे कि अंग्रेजी राज के विरुद्ध किसी भी विद्रोह की संभावना ख़त्म करने के लिए इस देश के समाज को भीतर से जितना हो सके, बांट दिया जाए. इस देश के लोगों को यह अहसास कराया जाए कि भारतीय अपने आप में कोई शब्द है ही नहीं, बल्कि यहाँ तो हिन्दू-मुसलमान, अगड़ा-पिछड़ा, मद्रासी-बिहारी और ब्राह्मण-दलित हैं. जो हैं और रहेंगे ही, चाहे इस देश के लोग अपने-अपने कुंओं से उछलकर बाहर निकलने की कितनी भी कोशिश क्यों न कर लें.

तो इस तरह, यह राज इस देश के फायदे के लिए नहीं था, न ही इस देश को अंधकार से निकालकर उजाले की ओर ले जाने के लिए था. यह अश्वेत आबादी को सभ्य बनाने के लिए 'श्वेत लोगों पर बोझ' नहीं था और न ही हम अश्वेत या भूरे लोगों ने उन्हें ऐसा करने के लिए आमंत्रित किया था. ऐ भारत के लोगों, अगर यह राज इतना जालिम था और हमारा खून चूसने वाला था तो जिन्होंने इसे उखाड़ फेंकने का जिम्मा उठाया, वे हमारे क्या हुए? जाहिर है, वे हमारे तारक हुए, उद्धारक हुए. जिन्होंने भरे अँधेरे में उम्मीद की मशाल जलाई और अपने हाथ में थामकर उस मंजिल की ओर चल दिए जो कहीं दूर-दूर तक दिखाई भी नहीं देती थी. उन्होंने अपनी सारी व्यक्तिगत महात्वाकांक्षाएं ताक पर रख दीं, अपने भीतर का अहम् शून्य किया, अपने परिवारों को अपने संघर्ष का हिस्सा बनाया और आज़ादी की बलिवेदी पर कूद पड़े. उन्होंने हमारे मन में गहरे तक पैठी हीनता को निकाल बाहर किया.

आज कोई यकीन करेगा कि रामप्रसाद बिस्मिल का छोटा भाई बीमारी और अभाव में मर गया? लेकिन बिस्मिल के लिए देश अपने परिवार से बड़ा था. कोई यकीन नहीं करेगा, क्योंकि देशभक्ति के असली मूल्य छोड़कर हाथ में तिरंगा थामकर भारत माता की जय बोलना ही हमने देशभक्ति मान लिया है. कोई मानेगा कि

आज़ाद ने अपनी माँ-बाप की परवाह नहीं की और उनके लिए मिले पैसे क्रांतिकारी कामों में लगा दिए? कोई नहीं करेगा, क्योंकि आज बाज़ार में जो भी माल पटा पड़ा है, हम उस सबके खरीदार बनना चाहते हैं. कोई मानेगा, कि लोगों ने अपनी घर-गृहस्थी बेचकर प्रेस लगा लिए ताकि अंगरेजी राज के खिलाफ माहौल पैदा किया जा सके? नहीं मानेगा, क्योंकि मुनाफे से मुनाफ़ा कमाने के हमारे दौर में कौन ऐसा सिरफिरा होगा. उन लोगों ने लड़ना स्वीकार किया क्योंकि उनके मुताबिक़ लड़ने की जरूरत थी. वे असफल होकर भी देश की सेवा करना चाहते थे, सफल ही होना है यह उनकी प्राथमिकता नहीं थी.

उन लोगों ने लड़ने के सब तरीके अपनाए. कोई किसी तरह से अपना प्रतिरोध दर्ज कराता था, कोई किसी तरह. लेकिन एक बात जो सबमें एक जैसी थी, सब मिलकर अंग्रेजी सत्ता के खिलाफ लड़ रहे थे. इसलिए वे सब एक-दूसरे की बहुत क़द्र करते थे. गांधीजी पृथ्वीसिंह आज़ाद जैसे क्रांतिकारी को अपनी मोटर में छुपाकर ले जाते हैं तो एक अन्य क्रांतिकारी पंडित सुन्दरलाल को अपने कलेजे का टुकडा मानते हैं. गांधीजी अपने लाख मतभेदों के बावजूद सुभाष बाबू को अपना बेटा मानते हैं और बेटा सिंगापुर से आज़ाद हिन्द फौज को कूच कराने से पहले अपने पिता को राष्ट्रपिता पुकारता है. जयप्रकाश नारायण गांधीजी से खासे मतभेद रखते हैं परन्तु उनकी पत्नी गांधी के आश्रम में ही रहकर सेवा करती हैं तो वे इस बात से बेहद खुश भी रहते हैं. चंद्रशेखर आज़ाद को क्रन्तिकारी गतिविधियों के लिए पैसा कानपुर कांग्रेस समिति देती है तो मोतीलाल नेहरू और जवाहरलाल नेहरू उनके लिए खुद चंदा करते हैं. गांधी शाकाहारी होते हुए भी मौलाना आज़ाद और खान अब्दुल गफ्फार खान के लिए मांसाहारी भोजन का इंतज़ाम करते हैं. आज़ाद हिन्द फौज और सुभाष से लाख मतभेद के बावजूद ढिल्लों-सहगल और शाहनवाज़ की तिकड़ी पर लालकिले में चल रहे मुक़दमे में नेहरू दशकों बाद अपना काला कोट पहनकर उतर जाते हैं.

लेकिन चलिए, आपको इन्टरनेट पर भरी गयी ऊल-जुलूल कहानियों पर यकीन हो तो हमारी मत सुनिए. हम तो ठहरे उसी महान परंपरा के वारिस जो एकदम अकेले होकर भी अपनी टेक पर चलते रहेंगे. 'एकला चलो रे'... 'जब तोर डाक शुने केऊ ना आसे तबे एकला चलो रे.' गुरुदेव रवीन्द्रनाथ यह सिखा गए हैं कि एकदम अकेले होकर भी और घोर अलोकप्रिय होकर भी जब चलना पड़े, तो सिर गर्व से ऊंचा रखना. जिस दौर में आज़ादी की लड़ाई की बात करने वालों को, गांधी का नाम लेने वालों को और गांधी के हत्यारों का नाम उजागर करने वालों को भी, नेहरू को चाचा बुलाने वालों को बिना तौले गालियाँ परोसी जा रही हों, उस दौर में हम अपना सिर गर्व से ऊंचा रखकर अपने देश को प्यार करेंगे.

जिस समय में अल्पसंख्यकों के घरों में घुसकर उनको गोली मारी जा रही हो, सड़कों पर दलितों की खाल खींची जा रही हो, धर्मनिरपेक्षता को गाली बना दिया गया हो, गोडसे के मंदिर बनाये जाने की घोषणाएं की जा रही हों, आज़ादी की लड़ाई के नायकों को अपशब्द बोले जा रहे हों, समाज को भीतर से बांटने की साजिशें रची जा रही हों— हम कौन सी आज़ादी का जश्न मनाएं? यह तो उपनिवेशवाद का सबसे बुरा दुष्प्रभाव है जो हमारे सर चढ़कर नाच रहा है और हम हैं कि आज़ाद होने का जश्न मनाएं! अगर मनाना ही है तो कहिये कि हमने आज के दिन अपने देश को गुलामी के चंगुल से मुक्त कराया था. कहिये कि यह हमारी अपूर्ण यात्रा का पहला पड़ाव था. कहिये कि हमें अपने दिलो-दिमाग से औपनिवेशिक दुष्प्रभावों को निकाल फेंकना अभी बाकी है. कहिये कि हम आज़ाद हैं पर हमारा दिमाग अभी सांप्रदायिक जकड़न का गुलाम है. कहिये कि हमारी आज़ादी की लड़ाई अभी बाकी है और उसमें हमारी भूमिका भी अभी बाकी है. कहिये कि आज़ादी के जश्न का मतलब सिर्फ झंडा फहराना नहीं है. कहिये कि हमारा देश हमारे लोग हैं और जब तक इस देश का एक-एक इंसान भूख, बीमारी और जहालत से आज़ाद नहीं हो जाता, तब तक आज़ादी की लड़ाई जारी है। ❑

छोटी होती जोत, आंकड़ों के आइने में

किसानों की दुर्दशा और कृषि क्षेत्र पर मंडराते संकट के लिए कई कारण जिम्मेदार हैं लेकिन एक महत्त्वपूर्ण कारण छोटी जोत है। हाल के दशकों में भले ही भूस्वामियों की संख्या बढ़ी हो लेकिन कृषि भूमि दूसरे कार्यों के लिए हस्तांतरित होने से न केवल मालिकाना हक वाली जमीन कम हुई है बल्कि सीमांत किसानों की संख्या में भी बढ़ोत्तरी हो गयी।

1970-71 में आधे किसान सीमांत थे लेकिन 2015-16 आते-आते सीमांत किसान बढ़कर 68% हो गये हैं। गौरतलब है कि एक हेक्टेयर से कम जमीन के मालिक सीमांत किसान कहे जाते हैं। जबकि 2 हेक्टेयर तक के भू स्वामी छोटे किसानों की श्रेणी में आते हैं। 2 से 4 हेक्टेयर के भू-स्वामी अर्द्धमध्यम, 4-10 हेक्टेयर तक के भू-स्वामी मध्यम और 10 हेक्टेयर से अधिक के भू-स्वामी बड़े किसानों की श्रेणी में आते हैं। पिछले दशकों में सभी श्रेणी के किसानों की औसत भूमि कम हुई है। जैसे सीमांत किसानों की औसत भूमि 0.4 हेक्टेयर से घटकर 0.31 हेक्टेयर, छोटे किसानों की औसत भूमि 1.44 हेक्टेयर से घटकर 1.41 हेक्टेयर, अर्द्धमध्यम किसानों की औसत भूमि 2.81 हेक्टेयर से घटकर 2.71 हेक्टेयर, मध्यम किसानों की औसत भूमि 6.01 हेक्टेयर से घटकर 5.72 हेक्टेयर और बड़े किसानों के स्वामित्व वाली औसत भूमि 18.1 हेक्टेयर से घटकर 17.4 हेक्टेयर हो गयी है। यही वजह है कि खेती के लिए औसत भूमि 2.28 हेक्टेयर से घटकर 1.08 हेक्टेयर हो गयी है। यह जमीन 2010-11 में 159.59 मिलियन हेक्टेयर थी, जो 2015-16 में 157.14 मिलियन हेक्टेयर हो गयी है। यानी 1.53 प्रतिशत खेती योग्य भूमि कम हुई। कम जोत का सीधा असर किसानों की आय पर पड़ा है। इस कारण खेती से किसानों का मोहभंग हुआ है। एक चिन्ताजनक पहलू यह भी है कि अभी 86 प्रतिशत कृषि भूमि सीमांत और छोटे किसानों के पास है। 2030 तक 91 प्रतिशत भूमि इन किसानों के पास होगी। यानी सीमांत और छोटे किसानों की संख्या में बढ़ोत्तरी होगी।

आज़ादी की लड़ाई और पत्रकारिता

❑ संत समीर

महात्मा गांधी के जीवन का एक किस्सा है, जिससे आज़ादी की लड़ाई में पत्रकारिता के योगदान और उसकी अहमियत का अन्दाज़ा मिलता है। किस्सा तब का है, जब गांधीजी इलाहाबाद में पहली बार 'पायोनियर' अख़बार के दफ्तर पहुँचे। बापू कलकत्ता-बंबई मेल से गुजरात जा रहे थे। ट्रेन 45 मिनट के लिए इलाहाबाद स्टेशन पर रुकी तो उन्होंने इलाहाबाद की एक झलक लेने की सोची।उन्हें दवा लेनी थी तो स्टेशन के बाहर एक मेडिकल स्टोर पर जा पहुंचे। नतीजा यह हुआ कि दवा लेकर जब वे स्टेशन पहुँचे तो गाड़ी छूट चुकी थी। स्टेशन मास्टर ने समझदारी दिखाते हुए उनका समान ज़रूर उतरवा लिया था। बहरहाल, अब वे अगले दिन ही आगे की यात्रा कर सकते थे। गांधीजी का स्वभाव था कि वे एक भी क्षण बेमतलब का गँवाना पसंद नहीं करते थे तो उन्होंने बहुत सोच-विचार कर ब्रिटिश साम्राज्य के पक्षधर अँग्रेज़ी अख़बार 'पायोनियर' के संपादक से मुलाक़ात करने की सोची। गांधीजी ने लिखा है--'यहाँ के पायोनियर पत्र की ख्याति मैंने सुनी थी।भारत की आकांक्षाओं का वह विरोधी है, यह मैं जानता था।मुझे याद पड़ता है कि उस समय मिस्टर चेजनी उसके संपादक थे। मैं तो सभी पक्षों के आदमियों से मिलकर सहायता प्राप्त करना चाहता था। इसलिए मैंने मिस्टर चेजनी को मुलाक़ात के लिए पत्र लिखा। चेजनी ने मुझे बुला लिया।उन्होंने ग़ौर से मेरी बातें सुनीं।मुझे आश्वासन दिया कि आप जो कुछ लिखेंगे, मैं उस पर तुरंत टिप्पणी करूँगा,परंतु मैं आपको यह वचन नहीं दे सकता कि आपकी सब बातों को स्वीकार कर सकूँगा।'

इस घटना से समझा जा सकता है कि गांधीजी ने आज़ादी के अपने मिशन के लिए कैसे पत्रकारिता के रास्ते नाउम्मीदी में भी उम्मीद की किरण तलाश ली। दिलचस्प यह है कि आज़ादी के लिए लड़ रहे भारतीयों के मिशन के खिलाफ़ खड़ी अँग्रेज़ी पत्रकारिता को भी गांधी जी ने अपने पक्ष में इस्तेमाल करने में कामयाबी पाई।गांधीजी ने आज़ादी के मिशन में पत्रकारिता का इस्तेमाल कैसे किया, इसे व्यापक संदर्भों में समझने के लिए 'इंडियन ओपिनियन' से लेकर 'बांबे क्रॉनिकल', 'सत्याग्रही समाचार', 'नवजीवन', 'यंग इंडिया', 'हरिजन' तक की उनकी यात्रा पर निगाह डालनी पड़ेगी।

यह जानना भी दिलचस्प है कि भारत के आज़ादी के संघर्ष में पत्रकारिता की भूमिका निर्धारित करने का काम एक तरह से सबसे पहले एक अँग्रेज़ ने किया। जेम्स ऑगस्टस हिक्की ने 29 जनवरी, 1780 को 'बंगाल गजट' के रूप में भारत के पहले अँग्रेज़ी अख़बार की नींव रखी तो यह एक तरह से कंपनी सरकार के खिलाफ़ विरोध का मुखर स्वर ही बन गया। यह बात भी समझ लेने की है कि 'बंगाल गजट' या कहें 'हिक्की गजट' भारत की आज़ादी का स्वर मज़बूत करने के लिए नहीं निकाला गया था, पर जाने-अनजाने इसने एक भूमिका बनाई। यह अख़बार वास्तव में बाज़ार के लिए सूचनाएँ उपलब्ध कराने के लिए निकाला गया था, पर धीरे-धीरे इसने अँग्रेज़ी प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार और घूसखोरी को उजागर करने का काम ज़ोर-शोर से करना शुरू कर दिया।बात अँग्रेज़ी शासन को नागवार गुज़री तो जनरल पोस्ट ऑफिस ने डाक द्वारा समाचार पत्र भेजने की सुविधा ही रोक दी। हिक्की तब भी नहीं रुके, बल्कि उनका स्वर तीखा होता गया।'बंगाल गजट' भ्रष्ट अँग्रेज़ अधिकारियों के खिलाफ़ काफ़ी निंदात्मक और कड़े शब्दों का प्रयोग करने लगा। उस समय के गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स के खिलाफ़ भी इस अख़बार ने ख़ूब लिखा। यहाँ तक कि हेस्टिंग्स के लिए 'मिस्टर रांगहेड', 'द डिक्टेटर', 'द ग्रेट मुग़ल' जैसे शब्दों का इस्तेमाल किया गया। एक समय वह आया कि हिक्की पर मुक़दमा क़ायम कर दिया गया। छपाई के टाइप ज़ब्त कर लिए गए। हिक्की की माली हालत ख़राब होती गई, वे अकेले पड़ गए और अंततः 'बंगाल गजट' बंद हो गया। यह महत्त्वपूर्ण बात है कि ऑगस्टस हिक्की ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारी होते हुए भी भारत के पहले पत्रकार थे, जिन्होंने अभिव्यक्ति की आज़ादी के लिए अपनी ही सरकार से लोहा लिया। बहरहाल, 'बंगाल गजट' बंद होने के बावजूद गुलामी के उस माहौल में अँग्रेज़ी शासन से त्रस्त पढ़े-लिखे भारतीयों में जैसे जान फूँक गया। इससे प्रेरणा पाकर मद्रास, बंबई, दिल्ली जैसे कई अन्य शहरों से भी अँग्रेज़ी के साथ-साथ कई अन्य भारतीय भाषाओं में समाचार पत्र प्रकाशित किए जाने लगे।

जैसे-जैसे विभिन्न भारतीय भाषाओं में समाचार पत्रों का प्रकाशन शुरू हुआ, वैसे-वैसे देश की जनता में गुलामी से बाहर निकलने की ललक भी तेज़ होती गई। 1857 के विद्रोह में भी तब के समाचार पत्रों की भूमिका को दरकिनार नहीं किया जा सकता। 8 फरवरी, 1857 में मुग़ल शाही घराने के मिर्जा बीदर बख़्त द्वारा प्रकाशित किए गए 'पयाम-ए-आज़ादी' की भूमिका कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। इसके ज़रिये अजीमुल्ला खाँ की क़लम का जादू ऐसा चला कि अँग्रेज़ी हुकूमत की बेचैनी बढ़ गयी।इसमें नाना साहब पेशवा,मंगल पांडेय, ताँत्या टोपे और बहादुरशाह जफर जैसे देशभक्तों की संघर्ष-कथाएँ प्रकाशित की जाती थीं। बहादुर शाह जफर का यह संदेश इस अखबार में छपा, तो जैसे तहलका मच गया— ''हिंदुस्तान के हिंदुओं और मुसलमानों उठो, भाइयों उठो, खुदा ने इनसान को जितनी बरकतें अता की हैं, उनमें सबसे क़ीमती बरकत 'आज़ादी' है।''पयाम-ए-आज़ादी' ने लोगों के मन में जैसे राष्ट्रप्रेम का जज़्बा जगा दिया था। अँग्रेज़ों की नींद इस अख़बार ने कुछ यों हराम की कि उन्होंने इसके संपादकों, पत्रकारों को ही नहीं, इसके पाठकों तक को प्रताड़ित करना शुरू कर दिया। अँग्रेज़ी सरकार ने आदेश तक जारी कर दिया कि जिसके भी पास 'पयाम-ए-आज़ादी' की कोई प्रति पाई जाय, उसे गद्दार मानकर गोली से उड़ा दिया जाय।

सन् 1868 में चार भाइयों हेमंत, शिशिर, वसंत और मोतीलाल द्वारा वर्तमान बांग्लादेश के जैजर जिले के अमृत बाज़ार मोहल्ले से बांग्ला भाषा में 'अमृत बाज़ार पत्रिका' का प्रकाशन किया जाना कालांतर में बड़ी घटना बनी। इसकी आवाज़ दबाने के लिए वर्नाकुलर प्रेस एक्ट लाया गया, तो इसके प्रकाशकों ने भी समझदारी दिखाते हुए रातोंरात इसे बांग्ला से अँग्रेज़ी अख़बार बना दिया। सरकार की आलोचना जारी रही और इसके कई संपादकों को जिस तरह से जेल की हवा खानी पड़ी, वह अलग कहानी है। 1920 में इसे सर्वश्रेष्ठ राष्ट्रीय अख़बार कहा गया।

'बंगाल गजट' से लेकर समय-समय पर जहाँ-तहाँ से निकल रहे अख़बारों के स्वर को कानपुर के साहित्यकार पंडित जुगल किशोर शुक्ल ने गहराई से महसूस किया। पंडित जुगल किशोर ने कुछ सुरक्षित राह तलाशते हुए ब्रज और खड़ी बोली को माध्यम बनाकर 30 मई, 1926 को कलकत्ता से हिंदी का पहला समाचार पत्र 'उदंत मार्तंड' निकाला। अँग्रेज़ों को काफ़ी समय तक अपने खिलाफ़ व्यंग्य की यह हिंदुस्तानी भाषा समझ में नहीं आई, लेकिन यह कितने दिन चलता? 'उदंत मार्तंड' ने लंबा सफ़र तय किया, पर जनता में दिन-ब-दिन बढ़ती हुई क्रांति की भावना को अँग्रेज़ों ने देखा तो उन्हें 'उदंत मार्तंड' पर संदेह होने लगा। नतीजा हुआ कि पंडित जी पर नज़र रखी जाने लगी। अख़बार की डाक ड्यूटी बढ़ा दी गई तो पंडित जी की माली हालत जवाब देने लगी और इस तरह से यह अख़बार भी बंद हो गया।

इसी दौरान भारतीय पुनर्जागरण के अग्रदूत कहे जाने वाले राजा राममोहन राय ने भी भारतीय भाषाई पत्रकारिता को नयी धार देने का काम किया। उनके आंदोलनों ने पत्रकारिता को विस्तार दिया तो उस पत्रकारिता ने आज़ादी के आंदोलन को गति देने का काम किया। राजा राममोहन राय ने सीधे अँग्रेज़ी शासन का विरोध करने के बजाय सामाजिक कुरीतियों को लक्ष्य बनाया और बड़े पैमाने पर जागरूकता फैलाने का काम किया। वे ईस्ट इंडिया कंपनी में नौकरी करते थे, पर बाद के दिनों में नौकरी छोड़कर पूरी तरह से समाजसेवा के लिए समर्पित हो गए। सही मायनों में कहा जाय तो भारतीय भाषाई प्रेस के असली संस्थापक राजा राममोहन राय ही थे। बंगला हेराल्ड (अँग्रेज़ी), मिरातुल-उल-अख़बार (फ़ारसी), ब्रह्म मैनिकल मैग्ज़ीन (अँग्रेज़ी), संवाद कौमुदी (बांग्ला) तथा बंगदूत (बांग्ला-हिंदी-फ़ारसी) जैसे अख़बार निकाल कर उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम की पत्रकारिता का मार्ग प्रशस्त किया।

आज़ादी की लड़ाई ने ज़ोर पकड़ा तो देश में पत्रकारिता का भी जैसे विस्फोट हुआ। देशभक्त अख़बार निकालते, अँग्रेज़ों की धज्जियाँ उड़ाते, जेल जाते और छूटकर फिर अख़बार निकालते। हमारे क्रांतिवीरों ने पत्रकारिता का महत्त्व किस तरह से महसूस किया था, इसका अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि दीनबंधु एण्डूज ने लाला लाजपत राय को सलाह दी कि वे कोई ऐसा अख़बार शुरू करें, जो भारतीय जनमत के लिए कुछ वैसा ही काम करे, जैसा कि सीपी स्कॉट के 'मानचेस्टर गार्डियन' ने किया था। लालाजी ने इस काम को हाथ में लिया और अक्टूबर-1904 में 'द पंजाबी' शुरू हुआ। 'द पंजाबी' ने अपनी अहमियत कुछ ऐसी साबित की कि इसके ज़रिये इस बात का मानक ही निर्धारित हो गया कि आज़ादी की लड़ाई में पत्रकारिता की भूमिका और उसके सरोकार क्या होने चाहिए।

17 जनवरी, 1920 को जबलपुर से 'कर्मवीर' का प्रकाशन हिंदी पत्रकारिता के लिए एक बड़ी घटना सिद्ध हुई। महान् क्रांतिकारी माधवराव सप्रे की प्रेरणा से यह पत्रिका शुरू की गई। इसके पहले संपादक माखनलाल चतुर्वेदी बने। पहले ही अंक में चतुर्वेदीजी ने लिखा—''हमारी आँखों में भारतीय जीवन गुलामी की जंजीरों से जकड़ा दीखता है। हम हृदय की पवित्रतापूर्वक हर प्रयत्न करेंगे कि वे जंजीरें फिसल जाएँ या टुकड़े-टुकड़े होकर गिरने की कृपा करें। हम जिस तरह भीरुता नष्ट कर देने के लिए तैयार होंगे उसी तरह अत्याचारों को भी। किंतु भीरु और अत्याचारी दोनों ही हमारे होंगे और उनको दुनिया से हटा देने के लिए नहीं, उनकी प्रवृत्तियों को हटा देने के लिए हम उनसे लड़ते रहेंगे। हम स्वतंत्रता के हामी हैं। मुक्ति के उपासक हैं। राजनीति में या समाज में, साहित्य में या धर्म में, जहाँ भी स्वतंत्रता का पथ रोका जाएगा, ठोकर मारने वाले का हर प्रहार और हर घातक शस्त्र आदर से लेकर मुक्त होने के लिए प्रस्तुत रहेंगे।''

समाचार पत्रों की पत्रकारिता के अलावा साहित्यक पत्रकारिता भी आज़ादी की लड़ाई में कहीं से पीछे नहीं रही। इलाहाबाद साहित्यिक पत्रकारिता के साथ-साथ आज़ादी की लड़ाई की अलख जगाने का भी जैसे एक महत्त्वपूर्ण गढ़ बन गया था। सन् 1905 के बंग-भंग के दौरान यहाँ से 'स्वराज्य' नाम का उर्दू साप्ताहिक निकला, जिसके नौ संपादकों को एक-एक कर जेल की सजाएँ हुईं और भारी जुर्माना हुआ। चाँद, लीडर, भारत, अभ्युदय, मर्यादा, कर्मयोगी, सरस्वती, हिंदी प्रदीप जैसी यहाँ से प्रकाशित अनेक पत्र-पत्रिकाओं का आज़ादी की लड़ाई में अविस्मरणीय योगदान रहा है। यहीं से 'भविष्य' नाम का साप्ताहिक भी प्रकाशित हुआ, जिसके छह संपादकों को कठोर कारावास की सजाएँ भुगतनी पड़ीं।

इलाहाबाद से 1877 में पं. बालकृष्ण भट्ट द्वारा निकाली गई हिंदी की पहली महत्त्वपूर्ण साहित्यिक पत्रिका 'हिंदी प्रदीप' का तेवर इतना आक्रामक था कि यह ब्रिटिश सरकार की नज़र में हमेशा ही चढ़ी रही। बालकृष्ण भट्ट को प्रायः मजिस्ट्रेट के यहाँ हाजिरी देनी पड़ती और चेतावनी सुननी पड़ती। सरकार की कोपदृष्टि ऐसी थी कि उन्हें कई प्रेस बदलने पड़े। इस पत्र में राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत रचनाओं को पूरी निर्भीकता से जगह दी जाती थी। इसमें प्रकाशित माधव शुक्ल की एक कविता पर सरकार ने आपत्ति की और भट्ट जी से तीन हज़ार रुपये की जमानत माँगी। उन्होंने जमानत भरने से इनकार कर दिया और इस तरह सरकारी कोप के चलते सन् 1910 में यह साहित्यिक पत्र बंद हो गया।

अजब ही था कि सरकार अभिव्यक्ति का गला घोंटने के लिए नये-नये कानून लाती थी और आज़ादी के दीवाने बिना कोई परवाह किये विद्रोही स्वर मुखर करते रहते थे। 'प्रताप' में प्रकाशित लेखों की वजह से महान क्रांतिकारी गणेश शंकर विद्यार्थी को पांच बार जेल की सलाखों के पीछे जाना पड़ा। विद्यार्थी जी ने 'प्रताप' शुरू किया तो शहीदे आजम भगत सिंह भी इसमें नौकरी करने आये। इसी अखबार के दफ्तर में भगत सिंह की भेंट चंद्रशेखर आजाद से हुई थी।

भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में आजादी के समर्थक और विरोधी, दोनों तरह के पत्रों की अच्छी-खासी संख्या दिखाई देती है, पर दिलचस्प है कि अंग्रेजों के समर्थक पत्र भी प्रकारांतर से विद्रोही स्वर को दबाकर फिर उसे उभारने वाले ही साबित हुए। ❑

रपट

मरुस्थलीकरण; गम्भीर चुनौती

❑ भवानी शंकर कुसुम

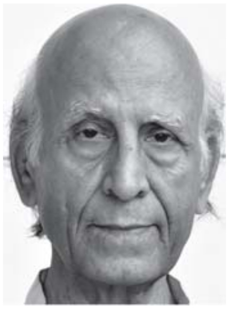

यूनाइटेड नेशन्स कन्वेंशन टू कोम्बेट डेजर्टिफिकेशन (यूएनसीसीडी) द्वारा पश्चिमी अफ्रीकी देश बुरकिनाफासो की राजधानी वोगेडोगु में 18 से 22 जून, 2019 तक आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन 'डेजर्टफि एक्शन 2019' में मुझे भारत के नागरिक संगठनों के प्रतिनिधि के रूप में भाग लेने का अवसर मिला। इस दौरान भारत में, विशेष रूप से राजस्थान में अकाल, भूमि क्षरण तथा मरुस्थलीकरण की स्थिति तथा उसके शमन के लिए गैर सरकारी स्तर पर किये जा रहे कार्यों पर अपना प्रस्तुतीकरण देने के साथ दुनिया के अनेक देशों में इन मुद्दों पर किये जा रहे कार्यों की जानकारी भी मिली।

इस परिप्रेक्ष्य में यह जानना प्रासंगिक है कि आगामी 2 से 13 सितम्बर, 2019 को यूएनसीसीडी का 14वां अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन 'कॉन्फ्रेन्स ऑफ पार्टीज' (सीजेपी 14) भारत सरकार के आतिथ्य में नई दिल्ली में होने जा रहा है। सम्मेलन में नागरिक संगठनों तथा गैर सरकारी संगठनों की सक्रिय भागीदारी के लिए यूएनसीसीडी के बोन (जर्मनी) स्थित सचिवालय तथा भारत सरकार के वन, पर्यावरण एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय ने मुझे राष्ट्रीय प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त किया है। दो सप्ताह तक देश की राजधानी में होने वाले इस अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में विश्व के 194 देशों के राष्ट्राध्यक्ष, राजनयिक, नागरिक संगठन तथा मीडिया सहित लगभग 5000 प्रतिनिधि भाग लेंगे।

बुरकिनाफासो के पर्यावरण, हरित अर्थनीति तथा जलवायु परिवर्तन मंत्री नेस्टर बेसियोबसीरे की अध्यक्षता में हुए उद्घाटन सत्र में दो बिन्दुओं पर विशेष रूप से चर्चा की गई-

* भूमि, जैव विविधता तथा जलवायु परिवर्तन के मुद्दे पर अन्तर्राष्ट्रीय समर्थन जुटाना, ताकि रियो सम्मेलन और विश्व प्रकृति संरक्षण सम्मेलन 2020 में इस पर विश्व समुदाय का ध्यान आकर्षित किया जा सके। * भूमि के समुचित प्रबन्धन की दिशा में जन-समुदायों द्वारा किये जा रहे उल्लेखनीय कार्यों का व्यापक आदान-प्रदान।

अफ्रीकी देशों द्वारा भूमि संरक्षण पर किये जा रहे प्रयत्नों, यूएनसीसीडी के सन्धि प्रयास तथा मरुस्थलीकरण की रोकथाम के लिए वित्तीय संसाधन पर गठित समूहों ने इन विषयों पर विस्तार से चर्चा की। बाद के सत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समर्थन जुटाने के लिये 4 विषयों पर अलग से कार्यशाला आयोजित की गई—

* सहारा मरुस्थल और सहेल क्षेत्र की महान हरित दीवार * शुष्क क्षेत्रों में पशु चरागाही तथा मरुस्थलीकरण की रोकथाम * भूमि क्षरण की रोकथाम तथा काश्तकारी अवधि का प्रबन्धन * शुष्क क्षेत्रों में जल का बहुद्देशीय उपयोग।

इन सभी मुद्दों पर हुई चर्चा में अफ्रीकी देशों के नागरिक संगठनों के प्रतिनिधियों की विशेष भागीदारी रही। चूंकि मरुस्थलीकरण, अकाल, सूखा और भूमिक्षरण की समस्याओं से वे ही सर्वाधिक पीड़ित हैं, इसलिए चर्चा में उनकी विशेष भागीदारी सहज समझी जा सकती है—

पर्यावरण की चुनौतियां : भारत में 2.11 प्रतिशत सालाना की दर से हो रही तीव्र जनसंख्या वृद्धि। गरीबी और पर्यावरणीय क्षय का अन्तर्सम्बन्ध, क्योंकि ग्रामीण आबादी का बड़ा हिस्सा भोजन, ईंधन, चारा तथा आश्रय जैसी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर है। अधिक से अधिक पैदावार के प्रयासों के कारण न केवल भूमि में क्षार की बढ़ोतरी होती है, बल्कि मिट्टी की भौतिक संरचना भी नष्ट होती है। भूजल का बड़ी मात्रा में दुरुपयोग तो हो ही रहा है, साथ ही सामुदायिक अपशिष्ट, औद्योगिक उत्सर्जन तथा रासायनिक खाद और रोग निरोधक दवाओं के व्यापक उपयोग से सतही जल भी प्रदूषित हो रहा है। यह भूजल की गुणवत्ता को भी प्रभावित कर रहा है। बड़े बांधों से न केवल वनों का विनाश हो रहा है, बल्कि बड़ी संख्या में स्थानीय लोग बेघर हो रहे हैं तथा स्थानीय वनस्पति और वन्य जीवों की भी भारी क्षति हो रही है।

भूमि अपकर्ष की स्थिति : स्पेस ऐप्लीकेशन सेन्टर की 2016 की रिपोर्ट के अनुसार देश के 3,287 लाख हे. कुल भौगोलिक क्षेत्र में से 964 लाख हे., अर्थात 29.32 प्रतिशत भूमि का क्षय हो चुका है। वैज्ञानिक दृष्टि से 33% भू-भाग पर वन होने चाहिए, जबकि 2017 के सरकारी आंकड़ों के अनुसार हम 22% का लक्ष्य भी प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं। पिछले 30 वर्षों के दौरान 23,716 औद्योगिक परियोजनाओं के कारण 14,000 वर्ग कि.मी क्षेत्र में स्थित वनों की बलि चढ़ा दी गई। जनजातीय समुदाय, अपनी आजीविका के लिए इन वनों पर निर्भर हैं, जिनको औद्योगिक विकास के नाम पर बेघर और निराश्रित कर दिया गया।

प्रदूषण : भारत में वायु प्रदूषण इस चैंकाने वाली स्थिति तक पहुंच चुका है कि पिछले वर्ष प्रत्येक 8 लोगो में से एक की मृत्यु वायु प्रदूषण के कारण हुई। प्रायः 12 लाख लोगों की मृत्यु वायु प्रदूषण के कारण प्रतिवर्ष होती है। इंडियन कौन्सिल ऑफ मेडिकल रिसर्च की रिपोर्ट के अनुसार वायु प्रदूषण के कारण लोगों की जीवन प्रत्याशा 19 महीने घट रही है, जो कि तम्बाकू के कारण होने वाली मौतों से भी अधिक भयावह है।

सम्मेलन के दूसरे दिन मैंने अपने प्रस्तुतीकरण में जिन बिन्दुओं पर जोर दिया, उनमें से निम्न पर सभी देशों के प्रतिनिधियों ने एक स्वर से सहमति व्यक्त की—

प्रायः सभी विकासशील देशों में कृषि के लिए अनुपयुक्त करोड़ों हेक्टेयर बंजर भूमि व्यावसायिक या औद्योगिक उपयोग के लिए आवंटित की जा रही है। यह समस्त भूमि वृक्षारोपण के अन्तर्गत लाई जानी चाहिए। इससे न केवल लाखों लोगों को रोजगार मिलेगा, बल्कि बड़ी मात्रा में कार्बन उत्सर्जन कम होगा, धरती का तापमान घटेगा तथा जैवविविधता में वृद्धि होगी। वनों में रहने वाले जनजातीय समुदाय, वृक्षों और पशु-पक्षियों का सम्मान करते हैं क्योंकि वे उनके जीवन का आधार हैं, इसलिये इन समुदायों की भूमिका को विशेष रूप से रेखांकित किया जाना चाहिए। वैज्ञानिक शोध को पारम्परिक ज्ञान, स्थानीय समुदायों के कौशल तथा अनुभवों के साथ जोड़ा जाना चाहिए। विभिन्न क्षेत्रों की स्थानीय संरचनाओं-कूएं, बावड़ी, टांका, बेरी, तालाब, बन्ध आदि को पुनः जीवित कर वर्षा जल की एक-एक बूंद को संचित करने का प्रयास करना चाहिए।

पर्यावरण संरक्षण के इन सभी प्रयासों और अभियानों में क्षेत्रीय, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक संगठनों की भागीदारी आवश्यक रूप से सुनिश्चित की जानी चाहिए। 2 से 13 सितम्बर, 2019 को दिल्ली में होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन (सीओपी 14) में नागरिक संगठनों की व्यापक भागीदारी तथा अकाल, मरुस्थलीकरण और भूमि क्षरण पर उनकी आवाज महत्वपूर्ण होगी। ❑

लोक-विमर्श

सूचना का अधिकार : कुंद होती धार

❑ सुनील अमर

जो आरटीआई कानून केन्द्र सरकार के लिए सिरदर्द बना हुआ था, उसको संशोधित करके सरकार ने अब पालतू और मनोनुकूल बना लिया है। इस प्रयोग को आसानी से सफल होते देख निश्चित ही सरकार का हौसला बढ़ा होगा कि इसी तरह वह कुछ अन्य संस्थाओं को भी पालतू बना सकती है। आने वाले दिनों में हमें ऐसी ही और खबरों को सुनने के लिए तैयार रहना होगा। इस संशोधन को खतरनाक माना जा रहा है।

आरटीआई कानून की पूर्ववर्ती संरचना हमें और केन्द्रीय सूचना आयोग के संप्रभु अधिकारियों को यह ताकत देती थी कि जो सूचनाएं सरकार के लिए संकट का कारण बन सकती थीं, उन्हें भी सरकार के हलक में हाथ डालकर निकाला जा सकता था। ऐसा इसलिए था कि आरटीआई के आयुक्तों की नियुक्ति कर देने के बाद सरकार उन्हें उनका कार्यकाल पूरा होने तक छेड़ नहीं सकती थी। केन्द्र की जिस कांग्रेसनीत सरकार ने यह कानून बनाया था उसे भी इसके चलते बहुत बार संकट झेलना पड़ा था लेकिन उसने अपने दस साल के कार्यकाल में इसे कभी तोड़ने-मरोड़ने की जरा भी कोशिश नहीं की क्योंकि तमाम भ्रष्टाचार और घोटालों के बावजूद उस सरकार में अपने आपको लोकतान्त्रिक दिखाने की शर्म बची हुई थी।

साल 2005 में बने इस कानून के तहत सूचना आयोग नामक संस्था का गठन किया गया उसमें एक मुख्य सूचना आयुक्त तथा छह सूचना आयुक्त के पद सृजित किये गये। इनका कार्यकाल पांच साल का रखा गया। इन्हें एक बार नियुक्त करने के बाद कार्यकाल पूरा होने तक हटाया नहीं जा सकता था तथा उनकी सेवानिवृत्ति की उम्र 65 साल रखी गई थी। केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल की सिफारिश पर राष्ट्रपति इनकी नियुक्ति करता था। इसमें मुख्य सूचना आयुक्त का वेतन आदि मुख्य चुनाव आयुक्त के बराबर (जो कि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के बराबर होता है) तथा सूचना आयुक्तों का वेतन चुनाव आयुक्तों के बराबर था। राज्यों में ये राज्य के चुनाव आयुक्त के बराबर तथा सूचना आयुक्तों का वेतन राज्य के मुख्य सचिव के बराबर होता था। ऐसा इस संस्था की पूर्ण स्वायत्तता को बनाये रखने के लिए किया गया था ताकि इसके अधिकारी सरकार के भय के बिना जनता की सूचनाओं तक पहुंच बनाये रख सकें। पूरे देश में सूचना आयोग के तन्त्र ने बढ़िया काम किया और करोड़ों लोगों ने इस टूल का इस्तेमाल करके दबा दी गई जानकारियां बाहर निकालीं। ये जानकारियां कितनी मारक व रहस्यमय और लीपापोती से भरी हुई थीं, इसका अन्दाजा इस एक बात से लगाया जा सकता है कि ऐसी सूचनाएं निकालने के क्रम में देश में अब तक लगभग 80 से अधिक लोग अपनी जान से हाथ धो बैठे!

इस सरकार के पिछले कार्यकाल के दौरान स्वयं सरकारी विभागों ने भी सरकार की स्वघोषित उपलब्धियों पर सवाल उठाये थे। ऐसा लग ही रहा था कि अगर इस बार फिर भाजपा पूर्ण बहुमत से सत्ता में आती है तो वह निश्चित ही इन विभागों को सबक सिखाने का कार्य करेगी। सूचना आयोग तो एक शुरुआती प्रयोग है, अभी तो कई ऐसी स्वायत्त संस्थाएं हैं जिन्हें भाजपा 'ठीक' करेगी। सीबीआई को तोता बनाने की आधी रात की छापामार कार्यवाही तो हम देख ही चुके हैं।

देश में जो अति महत्त्वपूर्ण संवैधानिक व विधायी संस्थाएं बनायी गई हैं उनके कार्यपालकों को इसीलिए उच्च वेतनमान व एक निश्चित कार्यकाल दिया जाता है ताकि उनके ऊपर सरकार के कोप की तलवार लटकने का भय न रहे। संवैधानिक संस्थाएं वे हैं जिनके गठन की व्यवस्था संविधान में की गई है। ये है- सर्वोच्च न्यायालय, चुनाव आयोग तथा नियन्त्रक व महालेखापरीक्षक कार्यालय। इसी प्रकार विधायी संस्थाएं वे हैं जिन्हें सदन में कानून बनाकर स्थापित किया जाता है। ये हैं- रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, लोकपाल तथा राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग। इन सभी संस्थाओं को सरकारी नियन्त्रण से मुक्त रखा गया है लेकिन अब सूचना आयोग का जो स्वरूप इस संशोधन के बाद हो गया है उसमें उसे कितना वेतन दिया जाय, कब तक काम करने दिया जाय तथा किसकी तैनाती कहां की जाय, यह सब सरकार के हाथ में हो गया है। अनुमान लगाया जा सकता है कि अब यदि कोई सूचना आयुक्त किसी सूचना के लिए सरकार से सख्ती करता भी है तो एक तो सरकार उसे सूचना देने में अपनी मर्जी मुताबिक हीलाहवाली कर सकती है और दूसरे उस आयुक्त को सेवामुक्त भी कर सकती है।

किसी भी चीज में संशोधन उसे और उत्कृष्ट तथा उपयोगी बनाने के लिए किया जाता है। इसके बजाय अगर संशोधन इसके उलट हो रहा है तो निश्चित तौर पर संशोधन करने वाला उसे बिगाड़ना और निष्प्रयोज्य करना चाहता है। कानून में भी तब तक कोई संशोधन नहीं किया जाता जब तक कि कोई आधारभूत आवश्यकता न आ गई हो। चर्चित कानून की धाराएं 13, 16 और 27 जो कि वेतन, कार्यकाल और दर्जा निर्धारित करती हैं, के संशोधन के लिए केन्द्र सरकार ने जो तर्क दिया है वह बहुत लचर और हास्यास्पद है और उसकी छिपी मंशा को ही जाहिर करता है। प्रधानमन्त्री कार्यालय में राज्य मंत्री जितेन्द्र सिंह ने संशोधन बिल पेश करते हुए तर्क दिया कि मुख्य सूचना आयुक्त को सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के बराबर रखकर वेतनमान आदि दिया गया है लेकिन यह बराबरी ठीक नहीं है क्योंकि मुख्य सूचना आयुक्त के फैसले को उच्च न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है।

यहाँ यह जानना दिलचस्प होगा कि मुख्य सूचना आयुक्त जैसे पद के पर काटने के लिए जो तर्क सरकार ने दिया है, हो सकता है कि उसी आधार पर कल मुख्य चुनाव आयुक्त के पर भी कतर दिए जायं क्योंकि मुख्य चुनाव आयुक्त का भी दर्जा व वेतन आदि सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के बराबर है और चुनाव आयोग के फैसलों को भी उच्च न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है।

सूचना के अधिकार कानून ने देश में सबसे ज्यादा व्यक्तिगत रूप से अगर किसी को परेशान किया है तो निःसन्देह वह प्रधानमंत्री स्वयं हैं। इन्होंने अपनी पढ़ाई-लिखाई और वैवाहिक स्थिति को लेकर चुनाव नामांकन पत्रों में जो जानकारी स्वयं उपलब्ध कराई थी, उसकी सत्यता प्रमाणित करने के लिए सूचना के अधिकार का उपयोग किया गया और मामला इतना बढ़ा कि तत्कालीन सूचना आयुक्त श्रीधर आचार्यलू ने जनवरी 1917 में दिल्ली विश्वविद्यालय को आदेश दिया कि वह साल 1978 की वह सूची याचिकाकर्ता को उपलब्ध कराये जिसमें कला स्नातकों के उत्तीर्ण होने का ब्यौरा है। ध्यान रहे कि प्रधानमंत्री ने सूचना दी थी कि उन्होंने उक्त साल में ही दिल्ली विश्वविद्यालय से बी.ए. पास किया है। इसके बावजूद दिल्ली विश्वविद्यालय ने इनकार कर दिया कि सम्बन्धित सूची ही उपलब्ध नहीं है! अनुमान लगाया जा सकता है कि किस उच्च स्तर से उसे ऐसा करने को कहा गया होगा। इसी प्रकार सरकार के लिए एक भारी सिरदर्द रिजर्व बैंक का मामला था जिसमें आरटीआई के तहत यह जानकारी मांगी गई थी कि सरकारी बैंकों में जो एनपीए यानी कि डूबा हुआ पैसा है, वह कितना है तथा देश के बड़े डिफाल्टर कौन-कौन हैं? रिजर्व बैंक ने जब सूचना देने से इनकार कर दिया तो याची ने साल 2015 में सुप्रीम कोर्ट में अपील की। सुप्रीम कोर्ट ने रिजर्व बैंक को आदेश दिया कि वह मांगी गई जानकारी उपलब्ध कराये लेकिन यहां भी दिल्ली विश्वविद्यालय वाला ही खेल हो गया!

दिलचस्प यह जानना है कि कांग्रेसनीत संप्रग के प्रथम कार्यकाल में जब साल 2005 में सूचना का अधिकार कानून बनाया गया तो लागू करने से पहले इसे परीक्षण के लिए संसद की सम्बन्धित समिति को सौंपा गया। उस समिति में अन्य सदस्यों के अलावा जो दो महत्त्वपूर्ण सदस्य थे, वे थे- रामनाथ कोविंद, जोकि अब राष्ट्रपति हैं और राम जेठमलानी, प्रख्यात वकील लेकिन अब वे भाजपा में नहीं है! पहले यह प्रस्ताव था कि मुख्य सूचना आयुक्त को केन्द्रीय सचिव स्तर का वेतनमान तथा सूचना आयुक्तों को अतिरिक्त सचिव स्तर का वेतनमान दिया जाय लेकिन इस समिति ने ही सुझाव देकर मुख्य सूचना आयुक्त का वेतन सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के बराबर तथा अन्य आयुक्तों का वेतन सर्वोच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों के बराबर कराया था और अब पूर्ण बहुमत से सत्ता में आने पर इसी पार्टी और महामहिम ने संशोधन का यह खेल किया है। खबर है कि आरटीआई कार्यकर्ताओं और कुछ विपक्षी राजनीतिक दलों द्वारा इस संशोधन को सर्वोच्च न्यायालय में चैलेन्ज किया जाएगा। ❑

आचार्य विनोबा की 125वीं जयंती पर सेवाग्राम में सम्मेलन

इस वर्ष आचार्य विनोबा की 125वीं जयंती के अवसर पर सर्व सेवा संघ, महाराष्ट्र सर्वोदय मंडल, वर्धा जिला सर्वोदय मंडल, किसान अधिकार अभियान, सदभावना संघ,राष्ट्र सेवा दल, वर्धा, महाराष्ट्र राज्य ग्रंथालय संघ की ओर से सेवाग्राम में राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया जा रहा है.

आचार्य विनोबा भावे का जन्म 11 सितम्बर 1895 को महाराष्ट्र के कोलाबा जिले के गागोदे गांव में हुआ. उन्होंने 18 अप्रैल 1951 को तेलंगाना के पोचमल्ली से भूदान के लिये आह्वान किया. भूदान के लिए उन्होंने 28741 किलोमीटर की पदयात्रा की. इसके परिणामस्वरूप उन्हें भारत के विभिन्न राज्यों में 47,63,566 एकड़ तथा बांग्लादेश में 110 एकड़ भूमि दान में मिली. यह भूमि समस्या के समाधान के लिए ऐतिहासिक कदम था. जो काम कत्ल और कानून से नहीं हो सका वह करुणा की शक्ति से संभव हुआ.

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने आचार्य

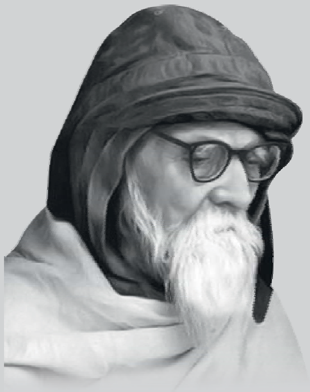

विनोबा को पहला सत्याग्रही चुना था. उन्होंने स्वराज शास्त्र, भूदान गंगा, गीताई, कार्यकर्ता पाथेय, गीता प्रवचन, लोकनीति, मोहब्बत का पैगाम, रुहुल कुरान, कुरान सार जैसी अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकों की रचना की.

उन्होंने ए बी सी यानी अफगानिस्तान, बर्मा एवं सीलोन (श्रीलंका) का महासंघ बनाने का विचार प्रस्तुत किया. वे मानते थे कि आज के विज्ञान के युग में राष्ट्र का विचार पुराना तथा कालवाह्य हो गया है.

अतः उन्होंने जय जगत का क्रन्तिकारी सूत्र प्रस्तुत किया. उनके अप्रतिम योगदान के लिए 1958 में उन्हें रैमन मेगसेसे पुरस्कार तथा 1983 में भारत रत्न से नवाजा गया. उनका निधन 15 नवम्बर 1982 को पवनार में हुआ.

सम्मेलन की जानकारी देते हुए सर्व सेवा संघ (अ.भा.सर्वोदय मंडल) के अध्यक्ष महादेव विद्रोही ने बताया कि आचार्य विनोबा की 125वीं जयंती के अवसर पर सर्व सेवा संघ तथा साथी संस्थाओं की ओर से 11 सितम्बर 2019 को सेवाग्राम (महाराष्ट्र) में राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया गया है. सम्मेलन में ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित भालचंद्र नेमाडे, मराठी साहित्य सम्मेलन, पुणे के पूर्व अध्यक्ष श्रीपाल सबनीस और गांधीवादी विचारक डॉ.रामजी सिंह विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित रहेंगे.

सम्मेलन का मुख्य विषय है : 'राष्ट्रवाद से जय जगत की ओर' इसका विषय प्रवेश गांधीवादी पत्रकार रमेश ओझा करेंगे. देशभर के सर्वोदय कार्यकर्ता इस अवसर पर उपस्थित रहेंगे.

स्वतंत्रता दिवस पर ध्वजारोहण

73वें स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर 15 अगस्त 2019 को सर्व सेवा संघ मुख्यालय सेवाग्राम और प्रकाशन विभाग वाराणसी में झंडारोहण कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। मुख्य कार्यक्रम प्रधान कार्यालय, महादेवभाई भवन में सम्पन्न हुआ, जहां अध्यक्ष महादेव विद्रोही के हाथों ध्वजवंदन हुआ। इस कार्यक्रम का संचालन वर्धा जिला सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष प्रशांत गुर्जर ने किया। अध्यक्ष महादेव विद्रोही ने कहा कि आज देश फिर से एक नई गुलामी के दौर से गुजर रहा है। अंग्रेजों के न होते हुए भी अंग्रेजियत बदस्तूर चालू है। समाज के अंतिम तबके के लोगों को अभी तक आज़ादी की अनुभूति नहीं हो पा रही है। इस अवसर पर देशभक्ति गीतों का कार्यक्रम भी हुआ जिसमें प्रशांत गुर्जर, मुकुंद म्हस्के एवं महादेव लोखंडे ने देशभक्ति एवं परिवर्तन के गीत प्रस्तुत किये। कार्यक्रम में बड़ी संख्या में सेवाग्राम तथा वर्धा की विभिन्न संस्थाओं के प्रतिनिधि एवं नागरिक शामिल थे।

नर्मदा घाटी के लोगों को जबरदस्ती डुबा रही सरकार

सरदार सरोवर में 139 मीटर तक पानी भर के सरकार मध्य प्रदेश की नर्मदा घाटी के हजारों लोगों को डूबने के लिए मजबूर कर रही है। सरदार सरोवर का दरवाजे बंद करने के कारण गांवों में पानी भरने लगा है। इसके परिणामस्वरूप बिजली का करेंट लगने से दो लोगों की मृत्यु हो गयी है। लोगों के अलावा उर्वर खेत, मकान, मंदिर, मस्जिद सब डूब रहे हैं। सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष महादेव विद्रोही ने एक प्रेस विज्ञप्ति में कहा है कि सरकार को न्यायालय के निर्देशों का पालन करना चाहिए जिसमें कहा गया है कि पुनर्वास के बगैर घाटी को खाली नहीं कराया जाय।

उन्होंने नर्मदा घाटी के इस आंदोलन के प्रति अपनी एकजुटता प्रकट करते हुए नर्मदा विकास प्राधिकरण से अपील की है कि सरदार सरोवर में 122 मीटर तक ही पानी रोकें ताकि जान-माल की हानि निवारी जा सके। साथ ही उन्होंने यह भी कहा है कि परियोजना से प्रभावित लोगों को घाटी में ही रोजगार उपलब्ध कराया जाय।

जमनालाल बजाज सम्मान

सर्व सेवा संघ के ट्रस्टी एवं ग्रामभारती समिति जयपुर के सचिव तथा संपूर्ण क्रांति राष्ट्रीय मंच के संयोजक भवानी शंकर कुसुम को वर्ष 2019 के उनके रचनात्मक कार्यों के लिए जमनालाल बजाज पुरस्कार हेतु चयनित किया गया है। सरकारी सेवा में रत भवानी भाई ने 1975 के गुजरात और बिहार छात्र आंदोलन से प्रभावित होकर नौकरी छोड़ दी। आपातकाल के दौरान भूमिगत रहकर आंदोलन की अलख जगाये रखने वाले भवानी भाई जेपी द्वारा गठित छात्र युवा संघर्ष वाहिनी की छः सदस्यीय राष्ट्रीय समिति के सदस्य रहे। लगभग बीस वर्ष तक पत्रकारिता करने वाले भवानी भाई को इसके पहले इन्दिरा प्रियदर्शिनी वृक्ष मित्र पुरस्कार, फोर्ड इण्डिया पर्यावरण पुरस्कार, जलमित्र पुरस्कार तथा वन विस्तारक पुरस्कार मिल चुके हैं।

सर्व सेवा संघ भवानी भाई को जमनालाल बजाज सम्मान के लिए हार्दिक बधाई देता है।

'Sarvodaya Jagat' Hindi Fortnightly
Registered under RNI No. 35495/78, Postal Registration No. VSI-(E) 04, Valid upto 31 December 2020
Issued by S.S.P.O. Varanasi (East Division)

कविताएं

संत विनोबा

❑ राजेन्द्र प्रसाद शुक्ल

संत विनोबा पुण्य यज्ञ,
भूदान कराने आये हैं।
गांव-गांव में अमर प्रेम की,
अलख जगाने आये हैं।
ग्राम निवासी भाई-भाई,
धन वाले और दीन किसान।
दोनों धरती पर ही जीते,
मरते दोनों एक समान।
भूख-प्यास दोनों को लगती,
सबका एक वही भगवान।
किन्तु एक है मौज उड़ाता,
एक सदा होता बलिदान।
दो भाई के बीच भेद की,
भीति ढहाने आये हैं।
बेजमीन मजदूरों को हम,
भूमि दिलाने आये हैं।
गांव-गांव में अमर प्रेम की,
अलख जगाने आये हैं।

ऐ अमीर! तुमको तो प्रभु ने,
लक्ष्मी का वरदान दिया।
किन्तु आज तक तुमने क्या,
कुछ भी प्रतिदान किया।
अरे तुम्हारे ही पड़ोस में,
भूखा नित प्रभु सोता है।
और दरिद्रों की काया में,
राम हमारा रोता है।
आग भरे प्रभु के आंसू से,
सबक सिखाने आये हैं।
हिंसा की खूनी ज्वाला से,
इंसान बचाने आये हैं।
गांव-गांव में अमर प्रेम की,
अलख जगाने आये हैं।

है अनीति यह धरती पर जो,
एक बिना श्रम, राज करे।
और परिश्रम करके दूजा,
रोटी को मुहताज फिरे।
दो जमीन अब उसको भाई,
जो भू पर जान निसार रहा।
हवा धूप और पानी पर कब,
किसका है अधिकार रहा?
जियो और जीने दो सबको,
यह समझाने आये हैं।
जन-मन के घने कुहासे में,
हम सूर्य उगाने आये हैं।
गांव-गांव में अमर प्रेम की,
अलख जगाने आये हैं।

चेत उठो अब नया जमाना,
आ करके दम लेगा भाई।
नहीं चलेगी अब आगे से,
शोषण की ये मौज कमाई।
आज प्रेम से मांग रहे हैं,
भू-संपत्ति तू दे डालो।
धरती का बेटा जागा है,
उसे प्रेम से गले लगा लो।
आज अहिंसक इंकलाब का,
शंख बजाने आये हैं।
नयी व्यवस्था का देखो,
निर्माण कराने आये हैं।
गांव-गांव में अमर प्रेम की,
अलख जगाने आये हैं।

बादल-से विनोबा

❑ शिशुपाल सिंह 'शिशु'

मानता हूं कि जलद हो,
बिना दिये जल लौट न जाओगे,
मगर यह अपनी मंदाकिनी
कहां पहले बरसाओगे?
धरा के एक छन्द के
तीन चरण तो डूबे पानी में,
जिन्दगी चौथे की, फंस गयी,
आग की खींचातानी में।

आग है गांव-गांव में
नगर-नगर में लूके दहक रहीं,
आस है वन-बागों में
डगर-डगर में लूयें लहक रहीं।
झुलसते हैं कुंजों के कोण,
लताएं जौहर करती हैं,
चिताएं अमराई में देख,
कोंपलें आहें भरती हैं।

किन्तु इस दावानल के बीच,
लगाकर जीवन का तारा,
खेत में एक खड़ा है संत,
शांति का लेकर इकतारा।
सभी को भावे,
ऐसा राग सुनाता है प्यारा-प्यारा,
वहीं पर पहला धुरवा डाल,
बहाओ कल्याणी धारा।

न समझो, उस दधीचि की,
चन्द हड्डियों में सीमित काया।
महाद्वीपों के ऊपर आज
पड़ रही है उसकी छाया।। ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा
महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार।